Queen Mary Maternity Library
MAINPURI
Class no. 891.7
Book no. K 95 B
Acc. no. 35

यह कृति
स्वर्गीय पूजनीया जननी
की पवित्र स्मृति में
समर्पित है
जिन्होंने
अनेक कष्ट झेलकर भी
मेरा मुख कभी म्लान नहीं होने दिया
और
हमें सदा हँसते रखा

निवेदन

लेखक, हास्य-लेखक, फिर हास्य-रस का कहानी-लेखक उसी प्रकार है जैसे हिंदुस्तान, हिंदू और स्वराज्य। मैं तो लेखक भी नहीं हूँ फिर हास्यरस की कहानी का लेखक होना तो मेरे लिए कितना कठिन है, मैं ही जानता हूँ। और फिर इसकी पगड़ी तो और लोगों के सर बँध चुकी है। इसलिए मैं इस बात का दावा नहीं कर सकता कि इस पुस्तक में जो कुछ आप पढ़ेंगे वह साहित्य की कसौटी पर खरा उतरेगा। किसी कहानी का कोई ध्येय नहीं, किसी में कोई कला नहीं, लिखने की एक लत पड़ गई है। कुछ-न-कुछ लिखता रहता

हूँ। उससे यदि किसी को हँसी आ जाय तो मेरा कुछ बिगड़ता नहीं। कोशिश यही रहती है कि मेरी लेखनी किसी को चुभे नहीं, गुदगुदा भले ही दे।

व्यक्तिगत रूप से जीवन ऐसा दुख और करुणा से भरा हुआ है, जिंदगी के तारतार में व्यथा इतनी बिंध गई है कि उनसे छुटकारा पाने के लिये मनबहलाव के लिये संसार को ऐसी दृष्टि से देखने का अभ्यास करता हूँ कि कहीं हास्य की एक रेखा मिल जाय। उसी मौज में लेखनी भी चलाया करता हूँ। दुनिया कुछ ऐसी जगह है कि यहाँ नई चीज देखिए तब उस पर हँसी आती है, पुरानी चीज देखिए तब उस पर हँसी आती है। किसी को फर्स्ट क्लास का सूट पहने देखा जाता है तब भी लोग हँसते हैं, सोलहवीं शताब्दी का पहनावा देखकर भी लोग हँसते हैं। संसार में अधिकांश स्थलों पर यदि मनुष्य हँसना चाहे तो हँसने की सामग्री है। परंतु हमारा कृत्रिम जीवन दुख और विषाद से इतना भरा है कि हँसी आती नहीं। इतना ही नहीं ठठाकर हँसना असभ्यता का चिह्न समझा जाता है।

इन कहानियों की घटनाएँ जीवन की घटनाओं से ली हुई हैं। यद्यपि कोई कहानी किसी व्यक्ति विशेष से संबंध नहीं रखती फिर भी इतना तो हम कह ही देंगे कि प्रत्येक कहानी में सचाई का बीज है। हमने जिस घटना को जिस

रूप में देखा या अनुभव किया है उसी को दिखलाने का प्रयत्न किया है। हाँ रंग उसमें निस्संदेह चढ़ाया है। 'चिकित्सा के चक्कर' वाले डाक्टर, 'कविता का कचूमर' वाले विद्यार्थी, 'खुर्रम खाँ जिन' ऐसे अध्यापक हम यदि देखना चाहें तो रोज हमारे समाज में मिलेंगे। 'सिनेमा की सैर' ऐसी घटनाएँ, 'प्रो० चपरगटकर' ऐसे सनकी और डिपुटी इंसपेक्टरी के उत्सुक हम रोज देखते हैं। उनके गुण-दोष को ऐसा रंग दे दिया गया है जिनसे वह हँसी की सामग्री बन गए हैं। कुछ मित्रों का कहना है कि हमारी कहानियों में हास्य से अधिक व्यंग का प्राधान्य है। मैं नहीं कह सकता। किसी विशेष दृष्टि से यह कहानियाँ लिखी नहीं गई हैं।

हास्य की कहानियाँ हिंदी में कम निकली हैं। मैं पहले कह चुका हूँ कि मैं साहित्यकार नहीं हूँ। मेरी रचनाएँ यदि हिंदी-जगत को पसंद आईं तो यह पाठकों की शालीनता है। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि दुखमय संसार में एकाध घड़ी मैं लोगों को हँसा दूँ। यदि मेरी रचनाएँ पढ़कर थोड़ी भी हँसी लोगों को आई तो मैं अपने को धन्य मानूँगा।

यह पुस्तक बहुत पहले प्रकाशित हो गई होती। छप-चुकी थी, जिल्द बँधते-बँधते मेरी पूजनीया माता का सहसा स्वर्गवास हो गया। मुझे खेद है कि उनके सामने यह प्रकाश में नहीं आई।

इस पुस्तक में कहीं-कहीं अशुद्धियाँ रह गई हैं। मैं पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे हिंदी का व्याकरण थोड़ा आता है और यह अशुद्धियाँ असावधानता के कारण हैं।

इस पुस्तक की अधिकांश कहानियाँ 'सरस्वती', दैनिक 'भारत', तथा 'सुधा' में छप चुकी हैं। मैं तीनों संपादकों का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस रूप में प्रकाशित करने की अनुमति दे दी है। मैं इस अवसर पर साहित्य-सेवक कार्यालय के व्यवस्थापक श्रीबजरंबलीजी गुप्त को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इसका प्रकाशन ही नहीं किया, प्रूफ इत्यादि भी वही देखते रहे।

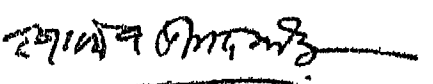

काशी
कृष्ण जन्माष्टमी, १९९१

बनारसी एक्का

कुछ चीजें परमात्मा अपने हाथों से बनाता है, और कुछ, जब काम की अधिकता होती है तब ठेके पर भी बनवा लेता है। बनारसी एक्का परमात्मा ने अपने हाथों गढ़ा है। एक और बात है। विधना का कुछ ऐसा विकट विधान है कि जिस शब्द के आगे बनारसी शब्द लग जाय, उसके जोड़ की अथवा उससे होड़ करनेवाली दूसरी वस्तु स्वर्ग, नरक और संसार में मिलनी तो कठिन है।

बनारसी साड़ी के समान साड़ी कहाँ दिखाई देती है? ऐसी-ऐसी बूटियाँ उसमें बनती हैं कि पुराने आशिके-जार का गुलज़ार दिल भी देखकर सुरझा जाय। बनारसी 'लँगड़ा' के सामने कितने दो पैर वालों के मुँह से राल टपक पड़ती है।

बनारसी ठग ऐसी चतुराई से माल उड़ा ले जाते हैं कि बड़े-बड़े लेखक और कवि भी दूसरों के लेख और कविताएँ इस आसानी से नहीं अपना सकते। वह ऐसा धोखा देते हैं कि बड़े कैंडे के पब्लिशर भी गरीब लेखकों को वैसा धोखा नहीं दे सकते। कहाँ तक गिनाने का कष्ट हम उठाएँ, और पाठकों के कोमल दिमाग में कलकलाहट पैदा करके बौखलाहट पैदा करने का व्यर्थ आयोजन करें।

ऐसी ही विचित्र चीज बनारसी एक्का है। आप वायुयान पर भले ही चढ़े हों, हाथी पर भले हीं चढ़े हों, रेल पर चढ़े हों, एंजिन पर चढ़े हों, गधे पर भी चढ़े हों, पर यदि बनारसी एक्के पर सवार नहीं हुए, तो भारतवर्ष में जन्म लेना बेकार है। इससे कहीं अच्छा था कि मंगोलिया की मरुभूमि में या टास्मानियाँ के टापू में जन्म लेते।

बनारस के एक्के दो प्रकार के होते हैं—एक साधारण और दूसरा गहरेबाज। साधारण एक्का अधिक दिखाई देता है। लेखनी से इसका चित्रण करना मेरे लिए कितना कठिन होगा, इससे समझ लीजिए कि किसी कवि ने अभी तक इस पर अपनी प्रतिभा का प्रसार नहीं किया। यहाँ तक कि 'हरिऔध' जी ने भी, जिन्होंने तीसी और सरसों पर भी कविता कर डाली है इस पर अभी कविता नहीं की। जोशी बंधुओं ने भी इस पर कोई लेख नहीं

लिखा। जब ऐसे सर्वतोन्मुखी प्रतिभावालों के खुर इस मैदान में नहीं टपके, तब मैं नाचीज किस खेत की मूली हूँ? फिर भी काशी में रहने के नाते और सवेरे-शाम इसका दर्शन करते-करते कुछ-न-कुछ कही लूँगा।

साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के अलबम हैं, या यों कहिए कि आजकल के स्कूलों और कालेजों के अधिकांश विद्यार्थियों की चलती-फिरती दौड़ती तसवीरें हैं। मालूम नहीं, इनके मालिक इन्हें खाने को देते हैं या नहीं, या कितना देते हैं, पर बेचारे जानवर होते हैं बड़े जीवट के। यह मजनूँ की तस्वीर है। पसली की हड्डियाँ ऐसी दृष्टिगोचर होती हैं, जैसे एक्स-रे का चित्र। हाँकने की गति हिंदी के कहानी-लेखकों की पैदाइश की संख्या से कम न होगी। मोटाई इन वीर तुरंगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न देकर इधर-उधर भटकते क्यों रहे। इनका सारा शरीर ऐसा लचकता है, जैसे अंगरेजी कानून। जिधर चाहो, उधर मोड़ लो। आँखों से कीचड़ उसी भाँति बहा करता है, जैसे हिंदोस्तान से योरप में सोना जाने का सिलसिला जारी है। इतने पर भी जैसा ऊपर कहा है, उनमें यह हिम्मत है कि तीन वृहदाकार-विशिष्ट गुरुत्वपूर्ण पिंडों को कुछ दूर खींच ही ले जायँगे।

परंतु यदि इतना कहकर ही मैं अपनी कलम रोक लूँ, तो एक्के के प्रति घोर अन्याय होगा। बनारसी एक्का स्वयं एक अद्भुत पदार्थ है। लखनऊ, प्रयाग, कानपुर, आगरा, पटना और कहाँ-कहाँ एक्के होते हैं, पर यहाँ के एक्के ने चलना आरंभ किया और एक मधुर संगीत शुरू हुआ। पावदान और पहिए के संयोग से 'सरगम' का सुरीला आलाप तो बनारसी एक्के का वैसा ही जन्म-सिद्ध अधिकार है, जैसा भारतीय नेताओं का मोटरकार पर सवार होना, या प्रेमिकाओं का बात बात पर रूठना, और प्रेमियों का नाक रगड़ना, रोना और मनाना। पावदान न होने पर भी ऐसे अनेक स्वर और उसके भेद आप सुनेंगे कि तबीयत फड़क उठेगी। यदि सचमुच कोई पहिया 'फ्री ह्वील' है, तो वह बनारसी एक्के का पहिया है। ऊपर, नीचे, दाहिने, बाएँ, जिधर देखिए वह घूमता मालूम होगा। देखनेवाले या सवारी को यह भान होगा कि पहिया धीरे-धीरे धुरे से असहयोग कर रहा है। परंतु बात ऐसी नहीं है। यह उसकी अदा है। यह बड़े नाज से कभी एक्के के बाहर की ओर और कभी भीतर की ओर घूमता है। इस नाज का उठाना सबका काम नहीं है। कमानी तो एक्के में होती है, यद्यपि मुझे इस फिजूलखर्ची की आवश्यकता नहीं मालूम होती, क्योंकि बनारस की सड़कें स्वयं ऐसे ढंग से बनी हैं कि किसी सवारी पर चलिए,

आपको केवल यही नहीं मालूम होगा कि कमानी पर उछल रहे हैं, बल्कि यह मालूम होगा कि समुद्र की लहरों पर कभी ऊपर कभी नीचे हिलोरें ले रहे हैं। फिर भी कमानी होती है। हाँ, उसमें तो यह पहचानने की शक्ति होती है कि जब उसने देखा कि हमारा काम सड़क ही कर रही है तो स्वयं पुराने अँग्रेजी अफसरों की भाँति 'फरलो' लेकर बैठ गई। इन एक्कों की लालटेन भी एक विशेषता रखती है। नियमानुसार उसे कोई कह नहीं सकता कि लालटेन नहीं है कानून के पंजे में लाल-टेन न रखने के लिये कभी एक्का आ नहीं सकता। यह तो वैज्ञानिकों के लिये छोड़ देता हूँ कि वह रिसर्च करें कि इस लाल-टेन का प्रकाश कितनी दूर तक पहुँच सकता है। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि इस प्रकाश में आप रात में यह नहीं पहचान सकते कि घोड़ा या एक्का कैसा है। यही इसमें रहस्य है।

इस एक्के का साज देखकर भारतवासियों का पुरातत्त्व-प्रेम और पुरानी बातों के संरक्षण की अतुलनीय चेष्टा नजर आती है। रस्सी-पर-रस्सी बंधी हुई है, टाँके-पर-टाँके पड़ते जा रहे हैं, पर साज बदला नहीं जा सकता। इसमें अर्थ-शास्त्र का एक गंभीर सिद्धांत भी प्रकट होता है। प्रत्येक वस्तु में से जितना मूल्य संभव हो, निकाल लेना चाहिए। हमारे विश्व-विद्यालयों के अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर अपने को बनारसी एक्केवान का चेला कुछ ही दिनों के लिये बना लें। देखिए,

उनका व्यावहारिक ज्ञान कितना बढ़ जाता है।

जब यह एक्का चलने लगता है उस समय का हाल न पूछिए। जब चलते-चलते एक्का रुक जाता है, उस समय तो घोड़ा मालूम होता है, पहले रात की दुलहिन है। पुचकारिए, चापलूसी कीजिए, मनाइए पर टस-से-मस होने का नाम नहीं। या जैसे गाँव के थानेदार। दारोगाजी जिसके घर के सामने अड़ गए, जल्दी टलने का नाम नहीं लेंगे। इन एक्कों के घोड़ों के समान दृढ़ यदि भारतवासी हो जायँ तो स्वराज्य प्राप्त करना बड़ा सरल हो जाय। ऐसे समय एक्केवान महाशय घोड़े से अनेक रिश्ते जोड़ना आरंभ कर देते हैं। पिता, चाचा, मौसा, नाना, दादा, बहनोई, शायद ही कोई ऐसा संबंध रह जाता हो, जो एक्केवान न जोड़ता हो। मेरे विचार से यह संबंध केवल मौखिक होता है। जिन शब्दों का प्रयोग यह सज्जन करते हैं, उन सबका यहाँ मेरे लिये लिखना कठिन है। हिंदी-शब्द-सागर में भी उनमें से कुछ ही शब्द आए हैं। संभव है, बाकी परिशिष्ट में आ जायँ।

गहरेबाज एक्का 'कैपिटलिस्ट' समुदाय का प्रतिनिधि है। ऐसे एक्कों के घोड़े महाजनों के समान मोटे, ताल्लुकेदारों के समान ताबेदार और अंगरेजों के समान अकड़नेवाले होते हैं। इनके एक्केवान अफलातून के अब्बा और बुकरात के बाबा से अपने को कम नहीं समझते। जिस समय ऐसे दो-तीन एक्के

एक साथ दौड़ने लगते हैं, उस समय यदि आप सवार हों तब बीसा कंपनियों की उपयोगिता सूझने लगती है। यदि आप बिना अंग-भंग के ऐसी सवारी से उतर आते हैं, तो यह ध्यान आता है कि अभी मआजजों का जमाना बीत नहीं गया है।

आपके पास मोटर भी हो, परंतु बनारस के रईसों में आपकी गिनती तभी होगी, जब एक ऐसे एक्के पर कम-से-कम रामनगर की हवा खा आएँ। यह रईसी, यह शान-बान कुछ और ही चीज है। बढ़िया पंप जूता, छैले किनारे की धोती, चिकने पोत का कुरता, दुपलिया टोपी लगाए एक ओर साहुजी, दूसरी ओर इसी ढंग की पोशाक पहने उनके दोस्त, और एक्केवान की बगल में एक सिपाही एक हाथ में लंबा लट्ठ लिए हुए, दूसरे हाथ में भंग-बूटी का सामान सँभाले हुए नजर आते हैं। विलायती कपड़े के बायकाट ने कपड़े के ढंग में परिवर्तन अवश्य किया है, पर और सारी बातें पुरानी रईसी के चिह्न आप देख सकते हैं।

रामलीला आरंभ होते ही ऐसे एक्कों की माँग बढ़ जाती है। हैजे की बाढ़ में डाक्टरों का मिजाज नहीं मिलता, और नौकरी खोजनेवालों के सामने अफसरों का रोब बढ़ जाता है, अथवा भारतवर्ष में आकर अंगरेजों के दिमाग का पारा कई डिगरी ऊपर चढ़ जाता है, उसी भाँति इन एक्केवानों का दिमाग बढ़ जाता है। साधारण लोग इनके पास फटकने नहीं

पाते। यह भी असाधारण और इनके ग्राहक भी असाधारण।

काशी में रहने के कारण मुझे एक्के पर सवार होना ही पड़ता है, इसलिए यदि एक्केवान के व्यक्तित्व पर थोड़ा भी प्रकाश न डालूँ, तो मुझे भय है कि मेरे साथ वह बदला लेने की ठानें। बनारसी एक्कावान एक संस्था है। उसकी बातों में सरसों का तीखापन, शराब की कड़वाहट, मिरचे की तिताई और गरम मसाले की गरमाहट का मजा पाया जाता है। एक बार जरा जोर से बात कीजिए, देखिए, क्या आनंद आता है। लेखनी में वह दम कहाँ कि व्यक्त कर सके। "एक लगावे, चार पावे" कहावत चाहे और कहीं सच हो या न हो, यहाँ सोलहो आने सच उतरती है। किसी एक्केवान को कुछ कहिए, देखिए, सूद-दर-सूद-सहित आप उसका उत्तर पाते हैं या नहीं। लड़ने में इनकी बराबरी जर्मन-पलटन भी नहीं कर सकती। हाँ, नियम पालने में यह बड़े पक्के होते हैं। प्रत्येक सवारी के चलने के समय पुलीस के हाथ में एक पैसा यह अवश्य देंगे। यह और किसी लिए नहीं, केवल इसलिए कि वह इनका एक्का अगोरा करते हैं। पुलीस की सवारी को बिना किराया लिए यह अवश्य बैठा लेंगे। ऐसा करके यह प्राचीन सनातनधर्म के अनुसार प्रजा का धर्म निबाहते हैं। प्रजा का धर्म राजा की सेवा करना है। अपनी सवारी की परीक्षा वह पहले कर लेते हैं तब एक्के पर सवार कराते हैं। यह

इस प्रकार। वह आपसे ऐसा किराया मांगेंगे कि आपकी चतुराई की परीक्षा हो जायगी। खेद की बात है कि इस परीक्षा में कितने ही लोग फेल हो जाते हैं।

जब से बनारस में तांगों का तांता लग गया और बसों की बहुतायत हो गई तब से हमारे एक्केवालों को बहुत हानि उठानी पड़ रही है। मुझे कभी-न-कभी उनकी शरण लेनी ही पड़ती है। एक बार एक एक्के पर सवार होकर स्टेशन से आ रहा था। कुछ पहिए का सुहावना राग और कुछ घोड़े की मंथर गति, झपकियाँ लेने लगा। आँख लगे देर न हुई थी कि छतरी के खंभे से माथा भी लगा। मैंने समझा सपने में गामा से कुश्ती लड़ रहा हूँ और उसे उठाकर दे मारा, उसीका झटका लगा है। आँखें अच्छी तरह खुलीं तो दो बातें दिखाई दीं। सर के अंदर हवाई जहाज-सी कोई चीज भन्ना रही है और घोड़ा राम दंडवत कर रहे हैं। सामने न कोई मंदिर था न कोई पंडित देवता। मुझे ऐसा मालूम पड़ा, हो न हो पलथी मारकर घोड़ाजी संध्या कर रहे हैं, क्योंकि संध्या का समय था। ख्याल आया कि मंडन मिश्र का तोता संस्कृत बोलता था तो यदि काशी में घोड़े संध्या करते हों तो क्या आश्चर्य!

एक्केवाले से पूछा कि क्या मामला है। वह बोला, साहब, जरा उतरकर चलिए अभी ठीक हो जाता है। मैंने

पूछा, 'क्या बीमार है ?"

वह बोला—'आप कैसी बातें करते हैं। अभी दिन भर में चार बार स्टेशन आया है, अभी बच्चा है, छैला जाता है। मुझे अधिक प्रश्न करने की हिम्मत न हुई। थोड़ी देर के बाद घोड़ा राम ने तशरीफ उठाई। मैं सवार हुआ। पहली बातें मैं भूल गया था। पूछ बैठा, 'यह घोड़ा कितने दिन का हुआ ?'

उसने उत्तर दिया 'बत्तीस साल !'

यह तो मैंने पढ़ा था कि सौ और सवा सौ वर्ष के मनुष्य अब भी होते हैं पर बत्तीस वर्ष का सतयुगी घोड़ा मैंने नहीं सुना था। मैंने समझा वह अपनी उम्र बता रहा है। मैंने फिर पूछा, मैं तुम्हारी उम्र नहीं पूछ रहा हूँ घोड़े की पूछ रहा हूँ।' इस पर उसकी त्योरियों पर बल पड़ गए और उसने कहा, आप मुझसे दिल्लगी कर रहे हैं। यह घोड़ा मेरे बाप के जमाने से है। यह मुझे लड़के के समान प्यार भी करता है। मुझे इसे बेचना नहीं है। आप इसे कमजोर न समझें। इसे इसलिए अधिक नहीं खिलाया जाता कि ज्यादः बलवान होने से अगर तेजी से दौड़ेगा तो बनारस की सड़कें ऐसी हैं कि सवारी के दो दो मुँह हो जायँगे। यह तो हमलोग आप लोगों पर एहसान करते हैं। नहीं तो सरजनों को रुपया देते देते आप लोगों का दिवाला निकल जाता।'

२३ जनवरी, १९३२

चप्पल की कहानी

न यह फ्लेक्स कंपनी का विज्ञापन है, न मैं टैनरी कंपनी का एजेंट हूँ। असल बात यह है कि जो रिसर्च का भूत सर पर सवार हुआ तो मैंने सोचा किस विषय पर सबसे उपयोगी रिसर्च हो सकता है। विज्ञान, साहित्य, इतिहास, भूगोल, दर्शन, अर्थशास्त्र सभी विषयों को मथकर लोगों ने इतना डावर कर दिया है कि बड़े-बड़े पनडुब्बे डुबकी लगाते हैं, एक कौड़ी भी हाथ नहीं आती; मिट्टी के सिवाय और कुछ आता ही नहीं। मेरी सूझ भी साधारण न थी। अछूतोद्धार का जमाना है। तुलसी-सूर पर लोगों ने रीमों कागज और गैलनों स्याही बरबाद कर डाली पर नतीजा कुछ नहीं। किसने डी० लिट् हिंदी में तुलसी-सूर से बनाए? दूसरी बात यह भी दिखाई दी कि आजकल ब्राह्मणों का जमाना नहीं रहा। चारों ओर से इन पर फटकार और निंदा का प्रहार हो रहा है। मैंने सोचा, रैदास की शरण लो, होता भी ऐसा है। जब

मनुष्य कहीं हारने लगता है तब जूते की ओर निगाह जाती है।

हाँ, तो चप्पल का ही मैंने रिसर्च आरंभ किया। जमाने के साथ चलना ठीक भी है। और आजकल चप्पल का ही जमाना है। चप्पल की इज्जत भी बहुत है। जहाँ सुंदर से सुंदर दिल्लीवाल और अंधरापुली की गुजर नहीं वहां चप्पल शान से जा बैठता है। कोई समय था जब चप्पल विंध्या के दक्षिण ही चलता था। परंतु उत्तर भारत पर आक्रमण करके अगस्त्य ऋषि का बदला इसने ले लिया।

लोग अभी इस बात का नहीं अनुभव कर रहे हैं कि स्त्रियां धीरे-धीरे अप्रत्यक्ष रूप से मरदों को अपने सांचे में ढाल रही हैं। अपने ऐसा रंग-रूप, वेश-भूषा मरदों का बना रही हैं। 'मदर' और 'मरद' में, वह समझती हैं, केवल अक्षरों का हेर-फेर है। वह भी शायद कुछ दिनों में न रह जाय। मगर यह काम उन्होंने चालाकी से किया। यदि कुछ मरदों को परिवर्तन करना पड़ा तो कुछ स्त्रियों ने भी किया। यदि पुरुषों ने मूँछ साफ कराई तो स्त्रियों ने भी आधा बाल कटवा डाला। इस 'लेन-देन' के सिद्धांत के अनुसार स्त्रियों ने पुंसत्व के गढ़ की ईंट खिसका दी। मेरे कहने का अभिप्राय यह है चप्पल भी केवल अबलाओं के 'कोमल कमल-से गुलाबन के दल-से' चरणों का आभूषण था। उन अबलाओं के पद-पद्मों की राह-बेराह कंटकों से रक्षा भी करता था और समय पर

उनके लिये अस्त्र और शस्त्र, दोनों का काम दे सकता था। अब भी देता है, संभवतः पहले से अधिक।

धीरे-धीरे पुरुषों ने भी इसकी उपयोगिता समझ ली। और आजकल तो शिक्षित-समाज में चप्पल का ही प्रयोग होता है।

\+ + +

इतिहासज्ञ इस बात की खोज में हैं कि चप्पल कब से संसार में प्रयोग में आ रहा है। आज से हजारों वर्ष पहले यूनान और रोम में तो इसका प्रचार था ही। उसके पहले भी भारत में था कि नहीं, यह विषय बड़ी खोज का है।

महेंजोदरो की खोज में मंडूक उपनिषद् की एक हस्त-लिखित प्रति डाक्टर मार्शल को प्राप्त हुई थी जो ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रक्खी हुई है। उसमें एक स्थान पर यह प्रसंग है।

एक दिन प्रातःकाल का समय था, नैमिषारण्य में शौनक ऋषि यज्ञ-हवन करके उठे ही थे कि एकाएक आकाश में बादल छा गया और अंधेरा बढ़ने लगा। ऐसा मालूम पड़ता था मानों देवताओं के यहाँ आज बड़ेक पर कोई भोजन तैयार हो रहा है, जिसका धुआँ सारे गगन-मंडल में छा गया है। दो-एक बूँदें भी गिरने लगीं। ऋषि ने पुकारा, 'कल्याणी, कल्याणी कल सायंकाल जो टूटा हुआ है, वह दे जाना। उसे

पान करने की प्रेरणा हो रही है।' कल्याणी ने एक कमंडल सोम रस लाकर शौनक के सामने रख दिया। शौनक ऋषि ने कमंडल मुँह से स्पर्श किया और कमंडल बात की बात में बीसवीं सदी के युवकों के चेहरे के समान साफ हो गया। फिर कमंडल आया, फिर आया और फिर आया। शौनक सोम के घूँट पीते जाते थे और परमात्मा के सूक्ष्म रूप की व्याख्या करते जाते थे। इसी समय नचिकेता भी आ पहुँचे। कल्याणी उठकर जा रही थी कि शौनक बोले, "आज वर्षों के बाद महर्षि आए हैं। सो हे आर्ये, इनका स्वागत करो। एक कमंडल सोम, बिना पानी मिला हुआ, और जव की बहुरी आपके संमुख रखो।" दोनों ऋषि खूब पीकर मस्त हो गए और विवाद होने लगा। अंत में शौनक ने कहा सृष्टि ब्रह्म का विकार है; नचिकेता ने कहा सृष्टि ब्रह्म की कल्पना है। "बहस बढ़ती गई ज्यों-ज्यों सुरा-पी।" सोम पेट के नीचे उतरता गया और हुज्जत बढ़ती गई। शौनक ने नचिकेता की दाढ़ी पकड़ ली; नचिकेता ने शौनक की जटा थामी। मानसिक विवाद के बाद शारीरिक जमनाष्टिक की नौबत आने ही वाली थी कि कल्याणी कुटी में से निकल आई और चिल्लाने लगी 'साधु साधु'। नचिकेता ने कल्याणी के शब्द सुनते ही दाढ़ी छोड़ दी और भागने की तैयारी की। भागते-भागते उन्होंने अपनी खड़ाऊँ खींच-

कर शौनक के चेहरे पर मारी जो चप से उनके गाल पर बैठ गई। शौनक को बड़ा क्रोध आया। परंतु नचिकेता पर उनके शाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था इसलिए उन्होंने खड़ाऊँ को ही शाप दिया। खड़ाऊँ हाथ में लेकर बोले, "जा कलियुग में तू चमड़े की हो जायगी। एक स्त्री के सामने तूने मेरी बेइज्जती की इसलिए तू सदा स्त्रियों के पैर के नीचे रहेगी और 'चप' से तू मेरे ऊपर आकर बैठी इसलिए तेरा नाम खड़ाऊँ न होकर चप्पल होगा।" जब उनका क्रोध कुछ शांत हो गया तब कल्याणी बोली, 'ऋषिवर, दोष तो नचिकेता का था, इस खड़ाऊँ ने क्या किया था ? यह तो केवल साधन मात्र थी।' तब ऋषि बोले, 'अच्छा जा कलियुग में कृष्णमूर्ति नाम के एक अवतार होंगे। जो तेरा उद्धार करेंगे और स्त्री और पुरुष को बराबरी का दर्जा देंगे। उस समय सब लोग तुझे अपना लेंगे और जब तू स्त्रियों के पास रहेगी तब पुरुष तुझसे डरा करेंगे।'

यदि डाक्टर मार्शलवाली उपनिषद् की कापी जाली नहीं है तो कोई कारण नहीं कि चप्पल का यह इतिहास जिसकी खोज मैंने इतने परिश्रम से की है, गलत हो।

भाषा-शास्त्र [फाइलालोजी] के विद्वानों का भी कहना है कि इस कथा में इतना अंश तो ठीक मालूम होता है कि चूँकि वह 'चप' से किसी के ऊपर बैठ जाती है इसलिए

उसका नाम चप्पल है। उनका यह भी कहना है कि 'चप्पल' शब्द इसी से निकला है क्योंकि चप्पल में चपल बनाने के गुण हैं। कुछ लोगों का यह भी खयाल है कि प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने 'ऐबे चेपेल' जो कविता लिखी है वह चप्पल पर ही है। उनका कहना है कि यह पंक्तियाँ

"Fifteen years have gone round
Since thou arosest to tread
In the summer morning the road"

यह दिखलाता है कि पंद्रह साल से अभी तक उनका चप्पल सड़क पर चल रहा था। फिर

Oh strong 'solo' by what shore
In the summer morning the road"

यह उसके सोल की मजबूती से आजिज होने पर कहा गया है।*

काव्य-रस-अलंकार के पंडित तो इसका लोहा या चमड़ा कहिए मान ही गए हैं। चप्पलातिशयोक्ति अलंकार ही बना दिया है। ऐसा मालूम पड़ता है चप्पल द्वारा भारतीय संस्कृति की बड़ी रक्षा होने की संभावना है।

अप्रैल १९३४.

[* मैथ्यू आर्नल्ड की आत्मा से धृष्टता के लिए क्षमा]

प्रेम की पहली चोट

मैं अब मान गया हूँ कि प्रेम में चोट लगती है। और ऐसी कि जन्म भर याद रहती है। इस जन्म में तो जरूर, आगे की सर आलिवर-लाज से पूछिए।

एफ० ए० पास कर मैंने बी० ए० के पहले दर्जे में नाम लिखाया था। जुलाई का महीना था, नंदकिशोर ब्रदर्स की दुकान पर पुस्तकों के खरीदारों की भीड़ टूटी पड़ती थी। किताबों के लिये घंटों ठहरना पड़ता था। बड़े दिन में कलक्टर साहब के बंगले का जो दृश्य होता है, वही यहाँ भी था। भेद केवल यह था कि बंगले पर रईस लोग बहुरूपियों की भाँति अनेक प्रकार के ड्रेस पहनकर डालियाँ और खिलौनों के तोहफे लिए एक झाँकी की बाट जोहते रहते हैं और यहाँ पाकेटों में नोटों का पुलिंदा लिए बुकसेलरों की तोंद भरने के लिये बीसवीं सदी के वीर भीड़ लगाए हुए थे।

भीड़ की सबसे पीछेवाली पंक्ति में मैं खड़ा था। पाँच बजे से खड़ा था, ६ बज रहे थे। इसी समय एक मोटरगाड़ी खड़ी हुई। एक सज्जन कोट-पतलून धारण किए हुए उसमें से उतरे। यहाँ तक कोई नई बात न थी। कोट-पतलून पहने नेकटाई लगाए कितने ही व्यक्तियों को मैंने देखा है, सभी लोगों ने देखा होगा। उपर्युक्त सज्जन के उतरते ही दुकान की ओर से एकाएक लोगों की निगाह कुतुबनुमा की सुई की भाँति इधर फिर गई। मैं भी घबराया, बात क्या है। परंतु तुरंत ही समझ गया कि बाबू साहब के साथ ही दो रमणियाँ, बल्कि ठीक-ठीक भाषा में एक रमणी और एक उसकी घेलुआ मौजूद थी। रमणी संभवतः बाबू साहब की स्त्री थी और दूसरी शायद उन दोनों सज्जन-सज्जना की लड़की थी। अगर अंग्रेजी का मसला 'लव ऐट फर्स्ट साइट' अर्थात् 'प्रथम दर्शन में प्रेम' का उदय होना ठीक है तो यह मसला मेरे ऊपर वैसा ही लागू हो गया जैसे नया फौजदारी-शासन-विधान चटगाँव पर लागू हो रहा है। और जब मैंने यह देखा कि उसी के लिये फर्स्ट इयर इंटर की पुस्तकें खरीदी जा रही हैं। तब तो दिल का रहा-सहा टुकड़ा भी असहयोग करके मुझसे अलग हो गया। आँखों ने भरना दे दिया कि उधर ही ताकेंगी।

बालिका का क्या वर्णन करूँ। कभी तो यह भय होता

है कि कलम फिसल न पड़े, फिर यह खयाल आता है कि उसका स्वाद पाठक भी चख लेंगे। मगर साम्यवाद का जमाना है, लेनिन की आत्मा को क्यों कष्ट दूं। सभी लोग सुन लें। शायद वयस् सत्रह वर्ष की हो। कपोल का रंग पके काश्मीरी सेव की तरह था। आँखों में शरारत प्लस चंचलता का सागर बड़े जोरों से लहरें ले रहा था।

बाबू साहब को उस लड़की ने एक छपी हुई पुस्तिका दी और वह पुस्तक लेने के लिये तैयार हुए पर भीड़ में किसीने विशेष सहायता न की। उन्हें कुछ घबड़ाया-सा देख दधीचि, कर्ण तथा हरिश्चंद्र की संमिलित आत्मा मुझमें जागृत हो गई। यों तो मैं अपनी पुस्तक लेने के लिये एक घंटे से खड़ा था पर इस समय मालूम नहीं कहाँ से मुझमें वीरता का आदुर्भाव हो गया। हिम्मत भी आ गई। कह नहीं सकता, मन में सोचा या नहीं परंतु जबान से निकल पड़ा, 'लाइए, मैं खरीद दूँ। कौन-कौन सी पुस्तकें चाहिएँ।' बाबू साहब कुछ बोलना ही चाहते थे कि वह लड़की बोल उठी 'हाँ बाबू-जी आपको दे दीजिए, खरीद दें। देखिए, ये पुस्तकें चाहिएँ।' इतना कहकर उसने पुस्तकों की सूची अपने कर-पल्लवों में ले ली। अपने जीवन में मैं कभी किसी स्पोर्ट—खेल-कूद—में शरीक नहीं हुआ था। पर इस समय मेरा हृदय हाई जंप की प्रैक्टिस कर रहा था। ड्यूक आफ विलिंगटन को जितना

आनंद वाटरलू का युद्ध जीतने में नहीं आया उससे अधिक मुझे इस समय आ रहा था। 'मैं भी कुछ हूँ' यह भावना मेरे मन में साम्राज्य बना रही थी। आखिर इतने लोग वहाँ खड़े थे। मुझीसे पुस्तक खरीदने के लिये क्यों कहा। कोई बात है। मैं भीड़ में घुस गया। मुझमें एकाएक कितना बल आ गया, कैसे आ गया, कुछ पता नहीं। उस समय का मेरा कोई चित्र भी नहीं है। अब मैं यह जानना अवश्य चाहता हूँ कि मेरी शकल उस समय कैसी हो गई थी। लोग मेरी ओर देख अवश्य रहे थे। दो आदमियों के पैरों के ऊपर जो मेरा जूता पड़ा और माल्गा पड़ता है उन्हें कुछ कष्ट हुआ, उन्होंने मुझे धक्का दिया तो मैं दुकान के और भी निकट पहुँच गया। जब किसमत साथ देती है, तब सब प्रकार से काम बनता जाता है। मैंने पुस्तकें खरीद दीं। किताबवाले का नौकर खाली न था, मैंने अपने हाथों से पैकेट बनाया। पारसल तैयार हो गया। उस समय विजिटिंग कार्ड की प्रत्यक्ष उपयोगिता मुझे नजर आई। कार्ड होता तो धीरे से उसी पारसल में रख देता। बीच-बीच में मैं उसकी ओर देखता जा रहा था। पारसल बनाने में कुछ देर तो लगाई पर आखिर कितनी देर लगाता। लाकर पुस्तकें बाबू साहब के हाथों में नहीं, बल्कि उस चलती फिरती तस्वीर के हाथों में रख दीं। वह मुस्कुराई। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ा कि

स्वराज्य मिल गया। बाबू साहब ने थैंक्स दिया। लड़की ने नमस्ते किया। मोटर चलती बनी। ज्योंही चलीं, खयाल आया मोटर का नंबर याद कर लेना चाहिए।

पुस्तक की दुकान पर गया, लड़की के लिये पुस्तकें खरीदीं, पर अपनी किताबों को खरीदने की सुधि न रही। फिर भीड़ के बाहर ही आ गया। इस बीच में कितने लोगों ने पुस्तकें खरीदीं। मैंने भी सोचा, आज अब ठहरना व्यर्थ है, दूसरे दिन आकर खरीद लूँगा। घर पर आकर तुरंत मोटर का नंबर नोट करने लगा कि कल इसका पता लगाने की चेष्टा करूँगा। मगर लिखने के समय बड़ी भयानक स्थिति हो गई। यह न ख्याल रहा कि नंबर ७९४ था कि ७४९। जब यह हाल हुआ, ऐसा मालूम पड़ा कि किसी ने हृदय को रेती से छील दिया। रात को नींद आई कि नहीं, पता नहीं। जागता था या स्वप्न देखता था, यह भी नहीं मालूम।

किसी प्रकार सवेरा हुआ। पहला काम मैंने यह सोचा कि आज कालेज न जाकर म्यूनिसिपलटी में जाकर मोटरकार के नंबर से पता लूँ। दस बजनेवाले ही थे, मैंने बाइसिकिल उठाई, चढ़कर चला। कोई पचास कदम गया था कि वही लड़की एक मकान में से निकली और मोटर पर सवार होकर कालेज की ओर चली गई। यह मेरे पड़ोस की ही बात थी और मुझे पता न था! चाँद आज तक घड़े में छिपा था। मैं भी कालेज

पहुँचा। प्रत्येक घंटे में मैं फर्स्ट इयर के कमरे के बाहर दो-तीन बार चक्कर लगा आता था। अंत में मुझसे दो बजे भेंट हो ही गई। मैंने नमस्ते किया। बातचीत आरंभ हो गई। नाम मालूम हो गया—विमला। यह भी मालूम हो गया कि हम लोग पड़ोसी हैं। विमला के पिता पंद्रह दिन हुए काशी में डिपुटी कलक्टर होकर आए हैं। बातचीत के पश्चात् जब मैं अपने दर्जे में लौटा तो बधाइयाँ मिलने लगीं। इतनी बधाइयाँ तो रायबहादुर होने पर भी शायद न मिलतीं। किसी ने कहा तुम बड़े किसमतवर हो, किसी ने पूछा किसका मुँह देखते हो यार!' किसी ने कहा कोई 'जंतर' बाँधता है। मेरा तो हाल ही न पूछिए। कोई बाजावाला वहाँ नहीं था, नहीं तो मैं नाचने लगता।

विमला ने अपने पिता से भी मुझे इंट्रोड्यूस कराया। जान-पहचान गहरी होने लगी। घड़ी मिलाना होता तब वहीं मैं जाता, रेलवे टाइम टेबुल देखना होता, तब वहीं। अभिप्राय यह कि विमला का घर मेरे लिये मंदिर, मसजिद, काबा, बुतखाना ही नहीं, बल्कि स्टेशन, घंटाघर, अस्पताल, थाना सब कुछ था। मुझे वहाँ जाने में बड़ा आनंद भी आता था। जितना आनंद स्कूली लड़कों को मास्टरों के बीमार हो जाने पर, खटमल से भरी चारपाई पर किसी मोटे मनुष्य के सोने पर, थानेदारों को किसी गहरी फौजदारी

की खबर सुनने पर, और महाब्राह्मणों को किसी राजा के मरने पर होती है, उससे अधिक आनंद मुझे वहाँ आता था। केवल एक बात खटकती थी। मैं जब विमला के यहाँ जाता था तब प्रायः देखता था कि जगदीश वहाँ बैठा है। जगदीश मेरा सहपाठी था। मालूम नहीं कैसे उससे इतनी घनिष्ठता हो गई। यह तो सभी जानते थे कि वह बड़ा धूर्त है, बड़ा शरारती है पर उसकी पहुँच यहाँ कैसे हो गई। जगदीश की शरारत का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। वह बोर्डिंग में रहता था, मगर खूब घूमता था। एक बार आधी रात को आया। वार्डन ने डाँटा। वार्डन साहब होस्टल के कोने के ऊपर के कमरे में रहते थे। रात को जब सब लोग सो गए तब जगदीश ने सीढ़ी पर मटर अच्छी तरह बिछा दी। सवेरे ज्योंही वार्डन साहब ने सीढ़ी पर पैर रखा, जिस तरह सिनेमा की फिल्म मशीन पर घूमती है, आप नीचे आ पड़े।

मैंने सोचा कि विमला और उसके पिता से जगदीश का असल रूप कह देना चाहिए। विमला से मैंने कह भी दिया। परंतु फिर भी मैं उसे अकसर उसके पास देखता था। परंतु मेरे साथ उसने जो किया वह जरमनी ने बेलजियम के साथ भी नहीं किया।

विमला की साल-गिरह थी। मैंने योंही पूछ दिया कि

अगर कोई भेंट भेजी जाय तो वह अस्वीकार तो न करेगी। विमला ने स्वीकार करने का वचन दिया। जिस दिन वर्ष-गाँठ थी उस दिन सायंकाल हम लोगों ने विमला के घर एकत्र होने का निश्चय किया। मैंने एक दिन पहले ही एक सुंदर 'सेंट' तथा साबुनों का बक्स खरीदा और एक सुंदर कार्ड पर लिखकर कि'.....की ओर से तुच्छ भेंट।' वर्ष-गाँठ के दिन सवेरे नौकर से एक सुंदर रुमाल में लपेटकर भिजवा दिया। नौकर जब लौटा तब पूछने पर उसने कहा कि डिपुटी साहब नहीं थे। जगदीश बाबू घर में जा रहे थे उन्हीं को दे दिया। मैंने समझा इसमें हानि ही क्या है। वह दे ही देगा। संध्या समय पूर्व निश्चय के अनुसार मैं विमला के घर गया। वहाँ बैठक में डिपुटी साहब आरामकुरसी पर बैठे थे। मैंने नमस्ते किया। उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, बल्कि उनका चेहरा लाल हो गया, बोले, 'तुम्हें कुछ तमीज है कि नहीं। मैं नहीं समझता था कि तुम ऐसे जंगली और बदतमीज आदमी हो। ऐसी चीज भी भेंट में भेजी जाती है।' एक साँस में डिपुटी साहब बोल गए। इस प्रकार तो शायद वह अपराधियों से भी कचहरी में न बोलते होंगे। मैंने समझा शायद 'सेंट, साबुन' इत्यादि भेजने से बुरा माना हो। इसलिए बड़े नम्र स्वर में कहा, 'आप ऐसे शरीफ आदमियों की लड़कियों को जो चीज मैंने मुनासिब समझी, भेजी।'

यह सुनते ही डिपुटी साहब आग हो गए। गर्जकर बोले, 'शरीफों की लड़कियों के लिये यही भेजा जाता है? जरा इधर तो आओ।' डिपुटी साहब आंगन की ओर गए। पीछे-पीछे मैं जाकर देखता क्या हूँ कि एक बंदर सूत की डोरी में बँधा है और उसके गले में वही मेरा कार्ड '.....की ओर से तुच्छ भेंट' बँधा हुआ है। मुझे काटो तो लहू नहीं। मैं समझ गया कि सारी शरारत जगदीश की है। ज्योंही मैंने कुछ और कहने का साहस किया, डिपुटी साहब ने इतनी जोर से डाँटा कि बंदर उछल पड़ा और डार टूट गई। बंदर मेरी ओर झपटा, मैं भागा तो उसने डिपुटी साहब से द्वंद-युद्ध का चैलेंज किया। डिपुटी साहब मेरे ऊपर गिर पड़े। मेरे माथे पर ऐसा मालूम पड़ा कि 'क्रप' की तोप ने निशाना साधा है। यह प्रेम की पहली चोट थी।

इंटरव्यू

रामजियावन लाल ने चार साल हिंदू-विश्व-विद्यालय पर हमला किया। वह तुलसीदास की इस चौपाई पर बेहद विश्वास रखते थे, 'अतिशय रगड़ करै जो कोई, अनल प्रगट चंदन तें होई'। या तो परीक्षक घबड़ा गए या उनमें जीव-दया-प्रचारिणी सभा का कोई मेंबर था, जो हो चौथे साल 'लीडर' में उसी रायल डिवीजन में रामजियावन लाल का नाम छपा। इनके पिता मुंशी ज्यूतबंधन लाल आजमगढ़ के एक गाँव के पटवारी थे। इस बात पर राय होने लगी कि आगे क्या किया जाय। बाप की राय हुई कि बेटा वकालत पढ़े। जब लोगों ने वकीलों की वर्तमान दुर्दशा का चलता-फिरता चित्र उनके सामने रखा तब वह खूब हँसे। बोले वकालत उनकी नहीं चलती तो वे बेवकूफ होते हैं। मैं ऐसी तरकीबें बताऊँगा कि मेरा लड़का रासबिहारी घोष और सुंदरलाल के कान काटेगा।

वकालत चलना जितना कठिन मालूम होता है, पास करना उतना ही आसान है। दो ही साल में रामजियावन लाल एल-एल० बी० हो गए और चले प्रैक्टिस करने। इनकी प्रैक्टिस तो क्या चलती थी, परंतु बार एसोसिएशन में इनके ऊपर और बेकार वकील अपनी विनोद-शक्ति की खूब प्रैक्टस करते थे। पटवारी साहब की सारी कला-कौशल और बुद्धि ने जब काम न दिया तब रामजियावन-लाल ने वकालत चलाने की मौलिक तरकीब ढूँढ़ निकाली। मालूम नहीं वह और वकीलों को अभी तक सूझी है अथवा नहीं। मुंसिफ साहब के मकान पर सवेरे रामजियावन लाल पहुँच जाते। बड़े अदब के साथ मुगलों के दरबार का-सा सलाम करते, सलाम करने के बाद आप बैठ जाते। उनका लड़का खिलाने लगते। अंदर से खबर आती कि तरकारी मँगवा दो। आप झट से बाजार जाने को तैयार हो जाते। मुंसिफ साहब के रोकने पर भी चले जाते और झोले में आलू-बैंगन लादे हुए तशरीफ लाते। इस प्रकार कभी सब-जज साहब की मोटर तक साफ करने में वकील साहब को संकोच न होता था। यह सब खबरें और वकीलों के कानों तक पहुँच गई थीं, जिन्हें लेकर इन्हें लोग आड़े हाथों लेते, पर यह इसकी जरा भी परवाह न करते थे। भला मुंसिफ या सब-जज कहाँ से मुकदमे दिलाते? परंतु इनका सवेरे का

टाइम टेबुल इन्हीं लोगों के बंगलों पर चक्कर देना था।

एक दिन सब-जज साहब के बंगले पर सवेरे पहुंचे। उनका नौकर लड़के को पेरांबुलेटर में बैठाकर हवा खिला रहा था। रामजियावन लाल ने नौकर के हाथों से गाड़ी ले ली और कहा कि तुम जाओ, हम चलाते हैं। सब-जज साहब भीतर थे। वकील साहब का अभिप्राय था कि सब-जज साहब बंगले के बाहर निकलें और उन्हें देखें तो प्रभाव पड़ेगा। इतने में कोई और वकील सब-जज साहब से मिलने के लिये बंगले में आता दिखाई दिया। उसने रामजियावन लाल को देख लिया परंतु इन्होंने समझा कि अभी नहीं देखा और भागने की ठानी ताकि फिर बार एसोसिएशन में कह-कहा न उड़े। गाड़ा छोड़कर बंगले के पीछे की ओर भागे। लालाशाही धोती पहने ही थे। भागने में खुल गई। धोती बाँधते हुए आप दौड़े चले जा रहे थे। निगाह और हाथ धोती की ओर थे। उधर बंगले के पीछे मैदान में सब-जज और उनकी स्त्री एक टेबुल के पास बैठकर चाय पी रहे थे। एक अपरिचित पुरुष को इस भाव से इधर आते देखकर सब-जज साहब ने पुकारा कौन है?" अभी रामजियावन लाल अच्छी तरह से धोती भी बाँध नहीं पाए थे। इधर "कौन है" शब्द सुनते ही उनके रहे-सहे हवास भी गायब हो गए। दोनों हाथ धोती पर रखे उन्होंने सब-जज साहब

की ओर देखा और देखते ही उलटे पाँव फाटक की ओर भागे। उस दिन उनकी सूरत कचहरी से गायब रही।

इसी प्रकार तीन साल कटे। इन तीन सालों के बीच दो मुकद्दमे उनके पास आए थे। साल पीछे एक का भी औसत होता तो जी को ढाढ़स होता। आखिर रामजियावन लाल ने मुंसिफी की परीक्षा में बैठने का इरादा किया। अपने मित्रों से कहा, 'देखो मैं मुंसिफ हो गया तो इन वकीलों को जो मुझे बनाते हैं, ठीक कर दूंगा। सब पर कंटेप्ट आफ कोर्ट का मुकदमा न चला दिया तो कहना।' अभी परीक्षा में देर थी। बार एसोसिएशन में लोग उन्हें झुक-झुककर सलाम करते थे। कोई कहता था 'आप तो मुंसिफ हो ही जायँगे, जरा मेरा ख्याल रखिएगा।' कोई कहता, 'अजी मुंसिफ तो क्या दो साल में आप सब-जज और शीघ्र ही जज होकर फिर हाईकोर्ट के जज होंगे। तब देखिएगा हमारे जिले का नाम।' रामजियावन लाल जब इन बातों को सुनते तो बिलकुल भागे भूतें की तरह फूल उठते और हाईकोर्ट की जजी का सपना देखने लगते।

मुंसफी की परीक्षा में बैठे। लिखित पर्चे कैसे किए यह तो अभी तक छिपा है, परंतु मौखिक परीक्षा का हाल लोगों को मालूम है। मौखिक परीक्षा के पहले लोगों ने इनसे कह दिया कि सूट पहनकर जाना चाहिए, उसका प्रभाव पड़ता

है। ऐसी पोशाक से अंग्रेज-परीक्षक चिढ़ जाते हैं। मुंशीजी के पास सूट था नहीं, सदा अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहनते थे। इतनी जल्दी सूट बनने में कठिनाई थी और फिर एक घंटे के काम के लिये चालीस-पचास रुपए स्वाहा करना मुंशीजी की बुद्धि ने उचित न समझा। मंगनी से काम निकालना ही ठीक समझा। दो चार मित्रों से दबी जबान से मुंशी जी ने कहा कि भूल से अपने सूट हम मकान पर छोड़ आए हैं, यहाँ सिर्फ शेरवानी ही लाए हैं। आने पर मालूम हुआ कि सूट पहिनना अधिक उचित होगा। अगर आप अपना सूट परसों सुबह एक घंटे के लिये दे दें तो बड़ा शुक्रगुजार हूँगा। सूट तो लोग दे देने को तैयार हो गए परंतु मुंशीजी का शरीर एक खास साँचे में ढला था। किसी का कपड़ा इनके शरीर पर फिट ही न होता था। मालूम होता था बाँस को कपड़े पहनाकर खड़ा कर दिया है। किसी किसी तरह से एक सूट मिला। ठीक तो शरीर पर यह भी न जमता था पर किसी तरह से काम निकालने लायक था। नेकटाई तो मँगनी मिली, कालर न मिला। किसी मित्र के पास इनकी गरदन की साइज का कालर ही न मिला। लाचार एक कालर और मोजे खरीदे। लेकिन बाजार में भी ठीक साइज का कालर न मिला। इंटरव्यू के दिन सवेरे से ही तैयारी करने लगे। यद्यपि रंग स्याही को

मात करता था फिर भी गोडरेज साबुन की बट्टी दो तीन बार अपने शरीर पर रगड़ी और मुँह तो शायद एक सौ एक बार से कम न धोया होगा। इसके पश्चात् सूट पहना। कालर और गरदन के बीच चार इंच से कम फासला न रहा होगा। नेकटाई बाँधना कल ही सीखा था। आइने के सामने खड़े होकर बाँधा। आइने में सीधी गाँठ दिखाई दी जो असल में उलटी थी। धोती बाँधकर ऊपर से पतलून पहना। कमर इतनी पतली थी कि जो पेटी माँग लाए थे उसमें उतने छेद ही न थे। अब इस समय जल्दी में गैलिस कहाँ मिले? रूमाल से पतलून बाँधा। ताँगा आया और आप चले। एक कमरे में और भी लोग थे, वहीं आप पहुँचे। आपको देखकर कुछ लोग तो भौंचक्के हो गए, कुछ लोग मुस्कुरा दिए। आप किसी की परवाह न करके एक कुर्सी पर बैठ गए। बगल के दूसरे कमरे में तीन अफसर बैठे थे जिनमें दो अंग्रेज थे और एक हिंदोस्तानी हाईकोर्ट के जज। एक एक करके पुकार हुई। पुकार होते ही मुंशीजी टहलने लगे। टहल ही रहे थे कि एक सज्जन ने इनसे कहा, 'बाबू साहब, देखिए आपका पतलून नीचे खिसक [illegible]।' मुंशीजी बड़े घबराए और अपने पतलून की ओर देखने लगे कि चपरासी ने इनका नाम पुकारा। मुंशीजी तो बिलकुल घबड़ा गए। इनके चेहरे से पसीना छूटने लगा। पसीना पोंछने को रूमाल

निकालकर मुँह जो पोछा तो कालर घूमकर बाएँ हाथ की ओर घूम पड़ा। इसी बीच में धोती भी शायद भीतर खुल गई थी क्योंकि उसका एक छोर पतलून के नीचे झांक रहा था, पर इसकी खबर मुंशी जी को न थी। किसी तरह लड़-खड़ाते इंटरव्यू के कमरे में पहुँचे। इन्हें देखकर उनकी सूरत देखकर अथवा उनका कपड़ा देखकर तीनों सज्जन दस सेकंड तक चुप रहे, फिर आपको बैठने के लिये कहा। इसके बाद प्रश्न आरंभ हुए। पहले अंग्रेजों ने ही सवाल पूछना शुरू किया। उनका उच्चारण समझने में मुंशीजी को कठिनाई होने लगी और 'बेग योर पारडन' की झड़ी लग गई। एक ने पूछा—आपके पिता क्या करते हैं? घबराहट में मुंशीजी के मुंह से निकला 'मेरे पिता आजमगढ़ के एक पटवारी के गाँव हैं।'

आपने कहाँ से बी० ए० पास किया?

जी हाँ।

कहाँ से?

.....यूनिवर्सिटी से।

कालेज में आपकी मुख्य 'हाबी' क्या थी?

हाबी का नाम आपने न सुना था। समझा शायद हाकी कहा है, मेरी समझ में नहीं आया। बोले—हाकी तो मैं नहीं खेलता था, क्रिकेट से थोड़ा शौक था।

फिर सवाल हुआ—साहित्य में कोर्स के अलावा आपने कौन-कौन से ग्रंथ पढ़े हैं ?

आपने बड़े तपाक से उत्तर दिया—राबिन्सन क्रूसो। इसके अलावा उनको कोई याद न था परंतु कुछ और कहना आवश्यक समझकर आपने कहा—शेक्सपियर-कृत शकुंतला, बनर्डशा का लिखा हैमलेट, और टैनिसन का विख्यात उपन्यास ला मिजरेबल भी पढ़ा है।

अफसर लोग चुप बैठे थे। मालूम नहीं किस प्रकार हँसी रोके थे। एक अंग्रेज सज्जन ने पूछा—हैमलेट में सबसे अच्छा चरित्र किसका है ? उत्तर मिला, 'पोरशिया का।'

अब और आगे सहन करने की हिम्मत इन लोगों ने न की। अंत में हाईकोर्ट के जज ने पूछा—आपका इस परीक्षा में बैठने से क्या मतलब था ?

आपने कहा—मैं मुंसिफ से सब-जज और फिर जज और फिर हुजूर की मिहरबानी से होई कोर्ट का जज हो जाऊँगा।

लोगों ने कहा, 'दैट विल डू' फिर भी आप न हटे। तब उन्हीं को कहना पड़ा, अब आप जा सकते हैं। आपने तीनों सज्जनों के पैर छुए और तब बाहर आए।

भूगोल की परीक्षा

मुझे भूगोल आता ही नहीं था। कम लोगों को आता है। कभी पढ़ा ही नहीं। आठवें दर्जे तक तो बेखटके पास होता चला गया। सादी कापी छोड़ आता था। कभी इंपार्टेंट मालूम हो जाता था उसीका जवाब रट लेता था। आज तक पता ही नहीं कि किताब में क्या लिखा है। आठवें दर्जे में भूगोल के घंटे में साल भर दर्जे में सबके पीछे बैठता था। ऐटलस खोलकर रख लेता था और एक उपन्यास रख लेता था। इस साल मैंने भूगोल के घंटे में चंद्रकांता संतति, भूतनाथ की जीवनी और चंडूखाने गुलखैरू पढ़ डाले। परीक्षा के पहले हेडमास्टर ने चेतावनी दी कि जो किसी भी विषय में फेल होगा उसे दरजा नहीं मिलेगा। मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया। और और विषय तो खराब नहीं थे, पास हो ही जाता। भूगोल ही रह गया था। मैंने पढ़ना भी आरंभ किया तो समझ में ही नहीं आया और परीक्षा-तिथि आ गई।

जब भूगोल का पर्चा सामने आया तो मैंने देखा कि कई सवाल मुझे आते हैं। पहले जितना भय मालूम होता था उतनी ही खुशी मालूम होने लगी। परमात्मा जब किसी की सहायता करता है तो इसी प्रकार से करता है। खूब लिखा।

पहला सवाल था—हिंदोस्तान का सबसे बड़ा बंदर कौन है ? उसके बारे में तुम क्या जानते हो ? संक्षिप्त विवरण लिखो।

मैंने सोचा परीक्षक भी कैसा सीधा-सादा आदमी है। यह सवाल तो बिना पढ़ा आदमी भी बता सकता है। मैंने लिखा, हिंदोस्तान के सबसे बड़े बंदर हनुमानजी हैं। भूगोल से इनका इतना संबंध है कि समुद्र फांद गए थे। ऐसा काम कोलंबस भी न कर सका था। उसे भी अमेरिका जाने के लिये जहाजों पर हफ्तों परेशानी उठानी पड़ी। भूगोल में इनका बड़ा महत्व है। इन्होंने लंका जला डाली, मगर कोलंबस अमेरिका न जला सका।

दूसरा प्रश्न था—ग्रहण कितने होते हैं ? किसी एक का वर्णन करो।

किताबों में क्या लिखा है सो तो मुझे मालूम न था, मैं पहले ही कह चुका हूं। जो सुन रखा था और विश्वास था कि ठीक होगा वही उत्तर लिख दिया। मैंने लिखा—ग्रहण तीन होते हैं। सूर्य-ग्रहण, चंद्र-ग्रहण और पाणि-ग्रहण। भीड़ तीनों में इकट्ठी होती है। पहले और दूसरे में लोग नहाते हैं। तीसरे में लोग बारात करते हैं और कभी-कभी नाच और महफिल भी होती है। मैंने तीनों ग्रहण देखे हैं। सबसे अधिक पसंद पाणि-ग्रहण था। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि शीघ्र ही [illegible] का क्या है। मैं हो यदि अभी तक न हुआ हो।

कृपा

तीसरा प्रश्न था—पृथ्वी गोल होने के कुछ सबूत दो।

यह प्रश्न भी मुझे आसान मालूम हुआ। मैंने उत्तर दिया कि मैं पृथ्वी गोल होने के तीन सबूत दे सकता हूँ। पहला तो यह कि पुस्तक में लिखा है। पुस्तक के लेखक बड़े विद्वान् और विलायत के पास हैं। कभी गलत नहीं लिख सकते। यदि गलत लिखते तो गलत बात कभी छप नहीं सकती। दूसरा सबूत यह है कि मेरे घर एक ईसाइन बुढ़िया आई थी। वह भी यही कहती थी। ईसाइन कभी झूठ नहीं बोलतीं। वह पढ़ी-लिखी भी मालूम पड़ती है। और तीसरे मुझे याद है कि जब मैं पाँचवें दर्जे में पढ़ता था तब मास्टर साहब ने भी एक बार कहा था। मास्टर साहब अगर झूठ बोलते तो वह अवश्य स्कूल से निकाल दिए जाते। हम उनकी बात का विश्वास करते हैं।

फिर एक सवाल मानसून के बारे में था। मुझे कुछ ऐसा याद पड़ा कि कहीं सुना है कि मानसून छः महीने एक ओर बहती है फिर दूसरी ओर। इसका केवल एक धुंधला-सा ज्ञान था। पर मैंने उसे कल्पना से ठीक कर लिया। मैंने लिखा कि मानसून वह नदी है जो ६ महीने पश्चिम से पूरब और छः महीने पूरब से पश्चिम ब[illegible]ती है। यह हिंदोस्तान के बड़े लाभ की है क्योंकि [illegible] ओर चाहें जा सकते हैं।

फिर पूछा गया था कि भारतवर्ष की सबसे बड़ी पैदावार क्या है और विज्ञान का उसमें कहाँ तक प्रयोग हुआ है ?

इस प्रश्न पर मुझे अवश्य कुछ देर तक सोचना पड़ा, यह मैं स्वीकार करता हूँ। सोचने लगा सबसे अधिक क्या चीज पैदा होती है। परंतु देर तक सोचना नहीं पड़ा, एकाएक दिमाग में उत्तर सूझ पड़ा। मैंने लिखा, भारतवर्ष की सबसे बड़ी पैदावार लड़के और लड़कियाँ हैं। मेरे कथन पर परीक्षक को विश्वास न हो तो इधर दो-तीन बार की मर्दुमशुमारी का मुकाबला कर लें। इस पैदावार में विज्ञान का अब बहुत प्रयोग होने लगा है। जहाँ पहले चमारिनें जाती थीं वहाँ 'मिड-वाइफ' और लेडी डाक्टर बुलाई जाती हैं। और जहाँ पहले हँसुए को पत्थर पर रगड़कर नाल काटी जाती थी वहाँ अब नई कैंची से 'बोरिक लोशन' से धोकर काटी जाती है। विज्ञान के और भी प्रयोग अवश्य ही होते होंगे मगर मुझे मालूम नहीं है। मेरे पड़ोस में एक वकील की स्त्री को लड़का हो रहा था। मैं उस घर में जाना चाहता था मगर मुझे किसी ने जाने नहीं दिया। इस बार अगर महल्ले में ऐसी घटना हुई तो मैं अवश्य देखूंगा और यदि आप फिर यह प्रश्न पूछने की कृपा करेंगे तो और भी ठीक उत्तर दूँगा।

छठा प्रश्न था कि बनारस से कलकत्ता जाने का सबसे सस्ता तरीका क्या है। मेरा उत्तर था कि सबसे सस्ता तरीका

डब्लू० टी० है, अर्थात् विदाउट टिकट, जिसका अर्थ है बिना टिकट। हाँ, खाने में कुछ खर्च अवश्य पड़ेगा। जब टिकट माँगनेवाला आवे तब शौचालय में घुस जाना चाहिए।

कहाँ तो एक भी प्रश्न की आशा नहीं थी और कहाँ छः छः सवालों का जवाब लिखकर घर लौटा! पूरी उम्मीद थी कि भूगोल में अपने दरजे में अव्वल हूँगा।

परीक्षा के तीन-चार दिन बाद मुझे चपरासी बुलाकर हेडमास्टर के कमरे में ले गया। सामने मेज पर मेरी कापी पड़ी थी। मैंने समझा, शायद मेरे उत्तरों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हो गया है। हेडमास्टर ने मेरी ओर ऐसे देखा जैसे कौशिक कौए की ओर देखता है। बोले—"तुम्हारे बाप क्या करते हैं?"

मैंने कहा—"आजकल तो पता नहीं।"

"कहाँ हैं?"

मैंने छत की ओर उंगली दिखाई।

बोले—तुम शरारत करते हो। तुमने भूगोल की कापी में बिल्कुल शरारत की है। मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। या तो एक दर्जन बेंत लो या तीन महीने का रस्टिकेशन।

मैंने पूछा, "रस्टिकेशन में क्या होगा?"

हेडमास्टर ने कहा "तीन महीने कहीं न पढ़ना होगा।"

मैंने कहा, "रस्टिकेशन, नमस्ते।"

लेखक की डायरी

जाड़े की रात थी। कब्र के ढूहे के समान कंबल ओढ़े हुए कई मुसाफिर पड़े थे। कोई हिलता-डुलता भी न था। रेलगाड़ी कविसंमेलनों में पढ़नेवाले कुछ कवियों के समान बिना रुके चली जा रही थी। निस्तब्ध रात, में गाड़ी का शोर ऐसा जान पड़ता था मानों कोई पुराना कवि अमृत-ध्वनि छंद पढ़ रहा है। तीसरा दर्जा था। दो-एक साधारण गरीब किसान और दो मारवाड़ी अपने देश जा रहे थे। इनके साथ इतना असबाब था जैसे कहीं का मालगोदाम लिए जा रहे हैं। इन लोगों का पेट भी मालगोदाम होता है और साथ का सामान भी। कुछ लोग और थे जिनके साथ असबाब साधारण था, मगर वह लोग देखने में भले आदमी मालूम पड़ते थे।

त भी न करता था। जाड़े की रात में
लने का साहस कौन करता ? सब लोग
ुए थे या केवल मुँह लपेटे पड़े थे, मैं नहीं कह
सकता। कहूँ भी कैसे ? बाहर से कंबल के भीतर देखने की
मुझमें शक्ति नहीं। परंतु मैं जागता था। मुझे कानपुर
जाना था। सोचता था कि झपकी लग जाती तो जरा आराम
मिलता। कुछ नींद महारानी ने दर्शन देने की कृपा ज्योंही
की, इलाहाबाद जंकशन आ गया। कुली चिल्लाने लगे।
एक सज्जन जो मेरे सामने की पटरी पर सोए हुए थे, एका-
एक घबड़ाकर उठ बैठे, मानो भूकंप आ गया हो। मुझसे
पूछा, "इलाहाबाद है।" मैंने कहा—'हाँ।' चट से आपने
एक छोटी-सी 'अटैची' उठाई, बिस्तर लपेटा। "कुली
कुली" पुकारकर एक कुली को बिस्तर देकर कंबल ओढ़े
हुए उतर पड़े। ज्योंही ट्रेन के बाहर आपने पैर रखा, पट से
कोई चीज ट्रेन में गिरी। मैंने लेटे ही लेटे पुकारा—'अरे
देखिए, अरे देखिए' पर किसी ने सुना नहीं। मैंने सोचा,
रुपए का 'पर्स' है। उठाकर देखूँ, शायद वे बाहर मिल
जायं। मगर सर्दी दफा १४४ की भाँति उठने ही नहीं देती
थी। फिर सोचा, स्वयं ही लौट आवेंगे। जब पाँच मिनट
के लगभग बीत गए मैंने विचार किया कि उठाकर रख लूं।
कानपुर पहुँचकर 'लीडर' में एक पत्र छपवा दूँगा कि इस

शकार से इतने रुपए मुझे मिले हैं। फिर तो जरा नाम भी हो जायगा और मिनटों में ईमानदारी की धाक भी बैठ जायगी। यह विचार जो दिल में आया तो सर्दी तो ऐसी भागी जैसे गाँधी कैप देखकर कुछ गोरों के चित्त की शांति भाग जाती है। मैंने आखिर वह गिरी हुई चीज उठा ही ली। पहले तो ऐसी भारी लगी कि मालूम पड़ा कि दो सौ रुपए नकद से कम न होंगे, पर ज्योंही आँख पड़ी, मालूम हुआ कि डायरी है। क्या कहूँ, सारा हौसला पस्त हो गया। बार बार यह खयाल उठता था कि मैं लाख ईमानदार होऊं पर कौन जानता है ? यह मौका तो स्वर्ण-संयोग था। समाचार-पत्रों में छप जाता तो सब लोग जान जाते। मोती जब तक सागर के बाहर न निकले किस काम का ? और कम-से-कम मेरी श्रीमतीजी, जिनसे पाँच साल हुए मैंने एक सौ बाईस रुपए उधार लेकर जेनिथ की कलाई-घड़ी खरीदी थी और जिनके रुपए वापस करने का दिल में खयाल भी नहीं हुआ, वह तो समझ जायँगी कि कभी न कभी मुझे रुपए मिल ही जायँगे। है ईमानदार शख्स। खैर, अब तो आशा का बादल उड़ गया। डायरी हाथ में लिए फिर कंबल ओढ़कर लेट गया।

थोड़ी देर में गाड़ी ने भी सीटी दी। तबीयत झुंझला उठी थी। नींद भी गई, ईमानदारी के डिप्लोमा लेने का साधन

भी गया। मालूम नहीं कैसे, यों ही डायरी का एक पेज बीच में खोलकर पढ़ने लगा। इच्छा तो पढ़ने की नहीं थी। मैं समझता था कि उसमें सिवाय इसके कि कल दस बजे अमुक व्यक्ति से मिलना है, परसों शाम को अमुक सज्जन मेरे घर आवेंगे, और होगा ही क्या? अधिक-से-अधिक, खर्च लिखा होगा कि सिनेमा का टिकट १) और पान-बीड़ी =)। परंतु मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि मैं एक पत्र की नकल पढ़ रहा हूँ। पत्र बड़ा मनोरंजक मालूम हुआ। मैंने डायरी का पहला पन्ना उलटकर देखा। नाम-पता सब साफ लिखे मिले। सारी डायरी मैंने पढ़ डाली। क्या किसी उपन्यास में इतना आनंद आवेगा? डायरी एक नवयुवक लेखक की है। उसने जो पत्र लिखे हैं, उसकी नकल इसमें मौजूद है। लेखक को डायरी वापस करने के पहले मैं कुछ पत्रों को यहाँ उद्धृत किए देता हूँ। नीति-शास्त्र की दृष्टि से मैं कहाँ तक ठीक कर रहा हूँ। मैं नहीं कह सकता। इस पर बाबू गुलाबराय की संमति ली जाय तो वे कुछ बता सकते हैं। परंतु मैं इतनी देर तक ठहरना नहीं चाहता। डायरी वापस करनी है, और मेरे हृदय में पत्र पढ़-कर आनंद का जो सागर उमड़ रहा है उसका सुख अकेले लेना भी नहीं चाहता। एक पत्र इस प्रकार है—

श्रीयुत संपादक जी,

'चंचला'

हिंदी के एक निस्वार्थ सेवक के रूप में आपको अपना परिचय देना चाहता हूँ। इसी पत्र के साथ एक लेख भी सेवा में प्रेषित करता हूँ। मेरा निष्पक्ष विचार है कि आपकी पत्रिका इस समय हिंदी-जगत में सर्वश्रेष्ठ है। मैं सभी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ता हूँ, पर जैसा संपादन 'चंचला' का होता है वैसा किसी का नहीं। मैंने अपने लेख में एक नवीन विचार का प्रतिपादन किया है, हिंदी-संसार में वह क्रांति उत्पन्न कर देगा। यह लेख सर्वथा मौलिक है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस लेख से आपकी पत्रिका की ग्राहक-संख्या दूनी नहीं तो ड्योढ़ी अवश्य हो जायगी। जिस मनायोग से यह लेख लिखा गया है उसका मूल्य आप ही सरीखे विद्वान् संपादक समझ सकते हैं। आप जानते ही होंगे कि एक मौलिक लेख लिखने के लिये कितनी पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ता है। इसलिए मौलिक लेखों पर पुरस्कार मिलने की कितनी आवश्यकता है, इसे आप स्वयं समझ सकते हैं। आशा है कि आप इस लेख के लिये यथोचित पुरस्कार भेजने की कृपा करेंगे। यदि आप उचित पुरस्कार दें तो मैं प्रति मास एक लेख भेज सकता हूँ। चित्र भी भेज रहा हूँ। इससे लेख की उपयोगिता बढ़ जायगी। हाँ, एक बात यह है। हिंदी-

त्रों की आर्थिक कठिनाई मैं समझता हूँ। आप जो कुछ
ुरस्कार भेज देंगे, मैं स्वीकार कर लूंगा। मुझे तो हिंदी
ी सेवा करना है। विशेष कृपा बनी रहे।

भवदीय,

.....बी० ए० विशारद

यह पत्र पढ़ते ही मुझसे रहा न गया। तुरंत दूसरा पत्र
ढ़ा। वह इसीके बाद का था।

प्रिय संपादक महोदय,

'श्मशान'

सेवा में एक लेख भेज रहा हूँ। आशा है आप शीघ्र प्रकाशित करके अपनी सहृदयता का परिचय देंगे। आपके पत्र में लेख भेजने का कारण यह है कि मेरा निजी खयाल है कि इस समय हिंदी के संपादकों में आपके समान साहित्य-मर्मज्ञ कोई दूसरा नहीं है। यों संपादक की गद्दी पर बैठ जाना और बात है, और संपादन-कला को समझना और ही चीज है। मुझे खेद है कि हिंदी में इस समय धांधली मची है। देखिए 'चंचला' पत्रिका निकलती है। हिंदी के लिये वह कलंक है और क्या लिखूं। मौलिक लेखों के लिये वहाँ स्थान नहीं है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सिवाय 'श्मशान' के और कहीं लिखूँगा नहीं। 'चंचला'-संपादक के कई पत्र लिखने पर मैंने एक लेख भेज दिया। आप जानते

हैं कि मुझे समय मिलता नहीं, फिर भी जब संपादक लोग चिट्ठी पर चिट्ठी भेजने लगते हैं तब मनुष्यता के नाते कुछ लिख ही देना पड़ता है। पर वहाँ तो मौलिक विचारों के लिये स्थान ही नहीं। संपादक महोदय की समझ में मेरा लेख आया कि नहीं, मुझे इसमें भी संदेह है। अस्तु। मैं बिना पुरस्कार लिए नहीं लिखता, पर आपको मैं क्या लिखूँ ? आप स्वयं जो उचित हो, भेज दीजिएगा। मुझे उज्र न होगा। 'श्मशान' तो मेरा ही है। हाँ, समालोचना के लिये पुस्तकें आप भेज सकते हैं।

आपका,

.....बी० ए०, विशारद

एक पत्र की ज्यों की त्यों नकल इस प्रकार है—

श्रीमती गुड़गुड़ा देवी 'कनेरी',

नमस्ते।

आपकी 'वियोग-विस्फोट' नामक कविता 'मलाई' पत्रिका में पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वाह ! वाह !! कविता क्या है, शेली पढ़ता तो नाचने लगता। कीट्स होता तो उछल पड़ता, बायरन बेहोश हो जाता। मुझे नहीं मालूम था कि भारत में ऐसा ऐसी प्रतिभाएँ परमाणुओं की भाँति परोक्ष में पड़ी हुई हैं। मैं समझता हूँ, अभी आपकी उम्र कम ही होगी और साहित्य-संसारमें आपको रस पीनेका सुअवसर बहुत दिनों तक मिलेगा। मुझसे आपसे परिचय नहीं है, पर इतना लिखने की धृष्टता

क्षमा कीजिएगा। आपकी कविता ने मेरे हृदय पर जादू का काम किया है। ओफ! क्या मैं उस समय को भूल सकता हूँ जब मैंने पहले-पहल आपकी कविता पढ़ी? कितनी बार पढ़ी कह नहीं सकता। हाँ, आपका कोई चित्र है? हो तो मुझ अकिंचन के पास एक भेज दें तो बड़ा अनुग्रह होगा। आपके विषय में शीघ्र ही एक लेख लिखने का विचार है। आपके बारे में बहुत कुछ जानने की इच्छा होती है। जो ऐसी कविता लिखता है। वह किस वातावरण में रहता होगा? मुझे लिखिए, अवश्य लिखिए।

.....बी० ए०, विशारद्।

पत्र पढ़ते ही मेरा हृदय लोट-पोट हो गया। लेखक महोदय ने कैसी तबीयत पाई है, लिखना लेखनी की शक्ति के बाहर है। मैं विशेष टीका-टिप्पणी करने लगूँगा तो पत्रों के आनंद से लोग वंचित हो जायँगे। दूसरा पत्र यह था।

श्रीमान् संपादक दैनिक 'गर्जन'

महाशय,

आपका विज्ञापन.....में पढ़ा। आपको एक सहायक की आवश्यकता है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। बिना एक योग्य सहायक के दैनिक पत्र का संचालन सफल रूप से होना असंभव है। मैंने बहुत सोच-विचारकर निश्चय कर लिया है कि मैं "गर्जन" के संपादन में उचित सहायता दे सकता हूँ।

अपनी योग्यता के बारे में स्वयं लिखकर आत्म-प्रशंसा का दोषी नहीं बनना चाहता। हिंदी में मेरी योग्यता कितनी है इसीसे समझ लीजिए कि मैं विशारद हूँ। इससे अधिक हिंदी की और क्या योग्यता हो सकती है? अंग्रेजी में बी० ए० हूँ। इसके अतिरिक्त बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ और तामिल, पश्तो तथा उड़िया का भी साधारण ज्ञान है। काम चलाऊ फ्रेंच, जरमन, रसियन, फारसी और तुरकी भी जानता हूँ। आजकल प्राकृत और अपभ्रंश का अध्ययन कर रहा हूँ। कला, कविता और आलोचना मेरे खास विषय हैं। वेतन मैं डेढ़ सौ से किसी तरह कम नहीं लूँगा। यों तो आपका मामला है, जो दे दीजिएगा स्वीकार कर लूँगा। मगर हाँ, आपका पत्र एक चीज बना दूँगा, तब कहिएगा। पत्रोत्तर शीघ्र दीजिएगा क्योंकि और भी दो-एक पत्रों ने मुझे बुलाया है परंतु आपका पहला हक है।

आपका,

.....बी० ए०, विशारद

इसके बाद यह पत्र था—

भाई गरुड़जी,

कृपा पत्र मिला। तुम्हें देखने को आँखें फूट रही हैं। तीन ही दिन तुम्हें गए हुए पर मालूम होता है तीन मन्वंतर बीत

गए। जब तुम्हारी याद करता हूँ कलेजे में हल चलने लगता है। हमने और तुमने मिलकर "स्ट्रैंड मेगजीन" की कहानी का जो अनुवाद किया था, और मैंने अपने नाम से मौलिक कहानी कहकर 'मरुस्थल' पत्र में भेजा था, वह प्रकाशित हो गया। कल अखबार आया है। साथ ही संपादक पंडित चपरगट्टूलाल शास्त्री का पत्र भी आया है। कहानी पसंद आई है। पुरस्कार भी मिलेगा। देखो, कैसा झांसा दिया है। अब दूसरी कहानी 'विंडसर' से मैंने ढूँढ़ रखी है। बहुत शीघ्र मैं कहानी-लेखक हो जाऊँगा और जब तक अंग्रेजी के पत्र निकलते हैं, खजाना खाली नहीं हो सकता। हिंदीवालों के फरिश्तों को भी पता नहीं लग सकता। श्रीमती कनरेजी का भी उत्तर आया है। उनसे शीघ्र ही मिलने जानेवाला हूँ। हिंदी में शीघ्र ही धाक जमनेवाली है। कोई उल्लू फँस जाय और कोई प्रकाशन का काम खोल दूँ। बस चाँदी है, चाँदी। जल्द आना।

तुम्हारा अभिन्न

.....

सब पत्र कहाँ तक लिखूँ? लेखक महोदय से प्रार्थना करता हूँ कि इसे प्रकाशित करा दें। हिंदी में मौलिक चीज होगी, मजेदार होगी और महत्वपूर्ण होगी।

खुरमस्काँ जिन्न

जब हमलोग नवें दर्जे में पहुँचे, पंडित रामनंदन चतुर्वेदी हमलोगों के क्लास-टीचर हुए। बहुत दिन की बात है। कितनी बातें अब भूल गई हैं। जब हमलोग आठवें दर्जे में पढ़ते थे, एक दिन हमारे साथियों में से कुछ लड़कों ने पंडितजी को सलाम नहीं किया। पंडितजी बहुत बिगड़े। बोले—"अच्छा नवें दर्जे में आना।" पंडितजी ने अब हमलोगों को तंग करना आरंभ किया। जरा भी देर हुई, बस, 'एब्सेंट' बना दिया। वह जमाना और था। घरवाले मास्टरों की शिकायत सुनते ही नहीं थे। अगर कुछ कहिए, तो समझते थे, इसे पढ़ना-लिखना तो कुछ है नहीं। हेडमास्टर थे यमराज के सहोदर, उनसे भी कोई आशा करना व्यर्थ था। हमलोगों का एक साथी था लछमनप्रसाद। हमलोग उसे लछमन-लछमन पुकारते थे। बड़ा सुंदर लड़का था। स्वभाव बड़ा मृदुल था। दर्जे के सब

लड़के उसे बहुत मानते थे। हमलोगों का तो उस दिन पढ़ने में मन ही न लगता, जिस दिन वह स्कूल न आता। क्रिकेट भी अच्छा खेलता था। खेलाड़ी होने पर भी बड़ा तेज था। और, खेलाड़ी लड़कों के ऐब भी उसमें नहीं थे। जहाँ हमलोग बिना दो-चार सिगरेट पिए दिन नहीं बिताते, वह पान तक नहीं खाता था। पंडितजी ने उसे तंग करना शुरू किया। पढ़ने-लिखने में तो उससे कुछ कह नहीं सकते थे, और-और तरीकों से उसे तंग करने लगे।

पढ़ाने-लिखाने में पंडितजी का मन नहीं लगता था। मालूम नहीं, किस तरह से सुना मैंने, पास तो एम्० ए० थे। एल्० टी० भी थे, पर दर्जे में पढ़ाते समय नानी मरती थी। जब इतिहास पढ़ाना होता, तो दर्जे में वह पाँच-सात मोटी-मोटी पुस्तकें लाकर मेज पर रख दिया करते थे। कहते थे, देखो, यह 'केंब्रिज मॉडर्न हिस्ट्री' है। मैं यह किताबें पढ़ता हूँ। तुमलोग क्या इतिहास पढ़ते हो। स्मिथ को कुछ नहीं आता। हमने स्मिथ साहब की ग़लतियाँ निकाली हैं। हमलोग खूब समझते थे। यह भी जानते थे कि पंडितजी के पढ़ाने से कुछ होना नहीं है। इसलिये वह 'पीरियड' यों ही कट जाता था। कभी कोई चित्र दिखलाते, कभी अपने घर का इतिहास बतलाते, पर पुस्तक और कोर्स की बातें बताना पंडितजी के लिये उतना ही असंभव था, जितना योरपीय राज्यों का निश्शस्त्रीकरण।

करण के लिये राजी होना। एक दिन पंडितजी ने कहा—"हमारी नानी 'काकेशियन रेस' की हैं।'" हमलोगों ने पूछा—"यह काकेशियन रेस क्या है पंडितजी!" पंडितजी बोले—"तुम इतना भी नहीं जानते! दसवें दर्जे में क्या पढ़ते हो। घास छीलो। 'रेस' कहते हैं दौड़ को। योरप से कई जातियों से दौड़ की शर्त हुई। जो जाति 'काकेसिया' पहाड़ सबसे पहले दौड़कर पार कर गई, वही काकेशियस रेस हुई। जब हमलोग पढ़ते थे, ये सब बातें जानते थे।' एक लड़का बोला—'तभी आप मास्टर हो गए न।" पंडितजी को चापलूसी अत्यंत प्रिय थी। दूसरे विद्यार्थी ने कहा—'आपकी नानी अभी जिंदा हैं?" पंडितजी बोले—"मेरे यहाँ कोई अस्सी साल से कम नहीं जिया।" फिर पंडितजी ने बताया—"सुनो, काकेशिया हिंदोस्तान के उत्तर में एक बड़ा ऊँचा पहाड़ है। शिया-धर्म वहीं से चला है। बीच में एक लड़का बोल उठा—"तो क्या आपके नाना साहब 'शिया' थे!" इसपर पंडितजी बहुत बिगड़े, और कहा—"तुम लोग कुछ जानते नहीं। तुमने हमारी इंसल्ट की। हम हेडमास्टर के यहाँ रिपोर्ट करेंगे।" इसपर लल्लन बोल उठा—"पंडितजी, काकेशिया तो कोई पहाड़ नहीं है। काकेशस पहाड़ है। वह भारतवर्ष के पास कहाँ है? वह तो रूस के दक्षिण-पश्चिम है।" पंडितजी मन में तो समझ गए कि यह लड़का ठीक-ठीक जानता होगा,

परंतु लड़कों के सामने हँसी न हो, इसलिये उन्होंने कहा—"तुम बिना मेरी आज्ञा के क्यों बोले, बेंच पर खड़े हो जाओ।" लछुन बोला—"पंडितजी, मैंने कोई ग़लती तो की नहीं।" "पंडितजी ने कहा—"तुम खड़े होते हो कि नहीं।" लछुन बेचारा बेंच पर खड़ा हो गया। स्कूल समाप्त होने पर कई लड़कों ने सलाह की कि पंडितजी को जब तक अच्छी तरह ठीक न किया जायगा, यह न मानेंगे। सबकी राय पक्की हो गई।

पंडितजी एक दसवें दर्जे के लड़के के यहाँ ट्यूशन करते थे। पढ़ाकर, चौक घूमकर दस बजे के लगभग घर लौटा करते थे। काकेशियावाली घटना के कितने ही दिनों बाद तक हमलोग पंडितजी से कुछ नहीं बोले। यदि वह कुछ कहते भी थे, तो हमलोग बातों में भुलावा दे जाते थे।

जाड़े के दिन आ गए थे। अब हमलोगों ने अपना कार्यक्रम खूब तय कर लिया था। पंडितजी क्लास में आए। हम दो-तीन लड़के पहले से सलाह कर चुके थे।

मौका देख रहे थे। लार्ड वेलेजली पढ़ाना था। मालूम नहीं, कहाँ-कहाँ की कहानियाँ पंडितजी ने शुरू कीं। हमलोगों में से एक लड़के ने कहा—"पंडितजी, एक किताब में मैंने पढ़ा है कि वेलेजली भूत से डरता था। अगर ऐसा होगा तो वह बड़ा डरपोक था।" पंडितजी ने पूछा—"किसकी लिखी

पुस्तक है ? ग़लत है।' लड़के ने कहा—"पंडितजी, डॉक्टर नकछेदी शाह ने बड़ी खोज से रिसर्च करके यह पुस्तक लिखी है!' इस खयाल से कि कहीं लड़के ऐसा न समझें कि मास्टर साहब ने यह पुस्तक नहीं पढ़ी, पंडितजी ने कहा—'मैंने वह किताब पढ़ी है। उस पुस्तक में बड़ी गलतियाँ हैं। अगर लिखा भी है, तो बिल्कुल गलत है।' एक लड़का बोला—"भूत होता तो है पंडितजी।" पंडितजी ने कहा—"भूतवूत कुछ नहीं है। मेरे सामने आ जाय, तो मैं जानूँ।' उस दिन भूत ही पर बात होती रही। पंडितजी ने अपनी वीरता की बड़ी-बड़ी कहानियाँ सुनाईं। मालूम पड़ा कि पंडितजी क्या हैं, नेपोलियन, नेलसन, रुस्तम, गामा, सबके एसेंस हैं। आप लगे कहने—"मेरे सामने भूत आ जाय, तो मैं जानूँ। लोग योंही कहा करते हैं। मैं एक बार अपने चाचा के साले के मौसेरे भाई की ससुराल गया था। उस गाँव में लोगों ने मुझे भूतों से डरवाना चाहा। मैं घने जंगल में—जहाँ दिन को भी लोग चिराग जलाकर जाते थे, और तब भी अकेले नहीं—भादों की अँधेरी रात में बारह बजे चला गया। लोग दूसरे दिन मेरे पैरों पड़ने लगे। मुझे कितने लोग गुरु बनाने आए।" लड़कों ने कहा—'सचमुच पंडितजी, बात तो कुछ है। आप में कोई विशेषता अवश्य है। नहीं तो ऐसी हिम्मत किसी की हो सकती है।'

स्कूल समाप्त हुआ। लोग घर गए। मैं और दो बालक और तैयारी करने में लगे। मैं तो यों ही सहायता देने के लिये उन लोगों के साथ हो लिया। सप्तसागर के पास एक कुआँ है, जहाँ रात में घोर सन्नाटा रहता है। अब तो करीब में सिनेमा-घर होने के कारण रात को भी थोड़ी राह चलती रहती है, परंतु उन दिनों आठ बजे के बाद उधर से कम लोग जाते थे। हमारे पंडितजी उधर से ही छड़ी फटकारते आया करते थे। हम तीनो साथी सप्तसागर के पास सात बजे के लगभग पहुँच गए। जब बिल्कुल सन्नाटा हो गया, हमारे एक साथी ने, जो जरा तगड़ा था, सारे कपड़े उतार दिए, और केवल लँगोट पहन लिया। मुँह में और हाथ में कालिख पोत ली, और दाढ़ी, जो हमलोग साथ लाए थे, लगाकर सड़क के किनारे खड़ा हो गया। मैं और दूसरा लड़का पास ही बरगद के पेड़ के नीचे, कुएँ की जगत पर एक कोने में बैठ गया। कोई आध घंटे बाद पंडितजी एक हाथ में मिठाई का दोना लिए, उसी के ऊपर मलाई का पुरवा रक्खे, दूसरे हाथ से छड़ी घुमाते चले आ रहे थे। ज्योंही पेड़ के निकट पहुँचे, वह बना हुआ लड़का सामने आ गया, और बनाई हुई आवाज में बोला—"ठहर!" पंडितजी के हाथ से छड़ी तो उसी दम गिर गई। पंडितजी को और अवसर न देकर फिर वह लड़का बोला—"रख मिठाई!" पंडितजी की घिग्घी बँध गई। कहाँ

लगे—"लि···लि···लि···" फिर उस लड़के ने डाँटा—"क्या लि-लि-लि-लि करता है, रख।" पंडितजी ने धीरे से मिठाई और पुरवा रख दिया। तब उस लड़के ने कहा—"तूने आज हम लोगों की बड़ी बेइज्जती की।" पंडितजी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। काँपते जा रहे थे। बड़ी कठिनाई से बोले—"आ···आ···आप क···क···क···कौन हैं?" लड़का जोर से बोला—"मैं खुर्रमखाँ जिन। तूने आज हम लोगों की निंदा की है। गिर पैरों पर।" पंडितजी तुरत उसके पैर पर गिर पड़े। तब उस लड़के ने कहा—"उठ।" पंडितजी उठे। दोने में से एक पेड़ा निकालकर उस लड़के ने उन्हें दिया, और कहा—"ले प्रसाद, कल से कभी भूतों और जिन्नों की शिकायत न करना।" उनके चले जाने पर हम लोगों ने मलाई और मिठाई पर हाथ साफ किया।

दूसरे दिन पंडितजी स्कूल आए, तो चेहरा उतरा हुआ था। हिस्ट्री का घंटा आरंभ हुआ। आते ही मैंने सवाल किया—'पंडितजी, वह वेलेजली वाला प्रश्न तो रही गया। सचमुच वह भूत से डरता था कि नहीं?" यह सवाल करते ही पंडितजी का रंग उतर गया। माथे पर पसीना छूटने लगा। पंडितजी ने कहा—"हम यह सब नहीं जानते।" रात जो खुर्रमखाँ बना हुआ था, उसने कहा—'अगर भूत होता है, तब वह डरता भी रहा होगा, नहीं होता, तब किस चीज से डरेगा। क्यों पंडितजी!

पहले यही तय हो जाय कि भूत होता है कि नहीं।" आज पंडितजी बहके नहीं। बोले—"हो या न हो, यह मेरा 'सब-जेक्ट' नहीं है।" मैंने कहा—"अजी, होता क्यों नहीं। मेरे घरवाले कहते हैं कि बनारस में खुर्रमखाँ एक जिन बड़ा खुर्राट रहता है।" यह नाम सुनते ही पंडितजी का अजब हाल हो गया। बोले—"अभी आते हैं।" और दर्जे से बाहर चले गए।

रिसेस में मुझसे बुलाकर पूछने लगे—"तुम्हारे घरवाले खुर्रमखाँ के बारे में जानते हैं?" मैंने खूब बनाकर खुर्रमखाँ का रूपक गढ़ा। विचित्र-विचित्र बातें झूठ-मूठ की कहीं। पंडितजी ने कहा—"अगर तुम किसी से न कहो, तो एक बात कहूँ।" मैंने कहा, कहिए। पंडितजी ने कहा—"कल मुझसे खुर्रमखाँ से भेंट हो गई।" मैंने कहा—"तब तो आप खूब लड़े होंगे।" पंडितजी पहले तो हिचकिचाए, फिर बोले—"भाई उसने तो मेरी मिठाई वगैरह रखवा ली।" मैंने कहा—"मैंने सुना है, वह तो पैर पर भी सबको गिरवाता है।" पंडितजी ने कहा—"खैर, यह तो वह कहता भी, तो मैं न करता।"

फिर इधर-उधर दो-एक बातें करने के बाद मैंने कहा—"उसमें एक और विचित्रता है। झूठ बोलनेवालों को बड़ा ...ा करता है।" इतना कहकर मैं चुप हो गया। पाँच मिनट

बाद पंडितजी बोले—"हाँ जी, ठीक याद आया। उसने मुझसे भी कहा था पैर पड़ने के लिये। पर मैं भला ऐसा कब करनेवाला था।" शाम को जब छुट्टी हुई, तो मुझे अकेले बुलाकर पंडितजी ने कहा—"देखो, किसी से कहो मत, तो एक बात कहूँ। मैं खुर्रमखाँ के पैर पर गिरा था। सुबह मैं झूठ बोल गया था।" अब पंडितजी बिल्कुल हम लोगों के कब्जे में हो गए थे। जो हम लोग कहते, वही करते थे। छमाही का परचा तक बता दिया। अब तो पंडितजी से जो काम हम लोग चाहते थे, ले लेते थे। घर पर हम लोग बैठे हैं, और रजिस्टर में 'पी' बना है। जब तक हम लोगों की परीक्षा नहीं हुई थी हम लोगों ने चतुर्वेदीजी को खूब तंग किया। उनकी सारी हेकड़ी भूल गई। बीच-बीच में जब कभी पंडितजी कुछ बहकते तो हम लोग दर्जे में ही कह देते थे, कि पंडितजी कल खुर्रमखाँ आपको पूछते थे। पंडितजी यह नाम सुनते ही बैठ जाते थे और उनका दिल भी बैठ जाता था। दूसरे लड़कों की समझ में ही न आता था कि बात क्या है। पंडितजी हृदय से मनाते थे कि हम लोग किसी प्रकार पास होकर स्कूल से निकल जायँ।

सिनेमा की सैर

'चित्रा' में 'दिल का सौदा' खेल हो रहा था। नगर में इसकी खासी धूम थी। दस दिन से लगातार खेल हो रहा था, पाँच दिन और होनेवाला था। जब चौक से गुजरता था, दिल मसोसकर रह जाता था। तेइस तारीख थी। भला, महीने के इस वक्त किसी नौकरी करनेवाले के पास सिनेमा देखने के लिये पैसे हो सकते हैं? एक बार सिनेमा हाउस के कंपाउंड का चक्कर रोज शाम को लगा लेता। शायद कोई मित्र मिल जायँ और पूछ बैठें—"क्यों दोस्त, चलोगे?" मगर जैसे प्लेग में मकान से चूहे गायब हो जाते हैं, कोई मित्र दिखाई नहीं दिया। कोई मिलता भी, तो कहता, कहो यार, देखने जा रहे हो। अभी तक नहीं देखा! बड़ा अच्छा खेल है। यह सुनकर जी में आता, दो घूँसे मुँह पर दूँ। और, अपनी हालत क्या कहूँ। मालूम होता था, कैसर मैं ही हूँ, और जरमनी की लड़ाई हार गया हूँ, पर क्या करता।

जैसे कालरा के, मलेरिया के और फायलेरिया के जर्म अनजान, बिना आपसे पूछे, आपके शरीर में घुस जाते हैं, यह नहीं देखते कि 'नो ऐडमिशन' की तख्ती बदन पर लगी है कि नहीं उसी प्रकार न-जाने कैसे इस खेल की सूचना श्रीमतीजी को मिल गई। मैं स्कूल से आया तो देखा, भोजन तैयार है, और श्रीमतीजी एक बढ़िया जंपर पहिने हुए हैं। मैंने अभी अभी कपड़े उतारे ही थे कि मेरे कान में यह शब्द सुनाई पड़े—'आज अच्छा खेल है चलो, देख आएँ।'

सिनेमा के विरोध में जितनी दलीलें मुझे उस समय सूझ सकती थीं, मैंने सुनाईं। मैंने कहा—'महात्मा गाँधी नहीं देखते, आर्य-समाज इसके खिलाफ है। तंदुरुस्ती पर बड़ा बुरा असर पड़ता है आँख खराब हो जाती है', इत्यादि परंतु मरज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की। मेरी सारी दलीलों के लिये कोई-न-कोई जवाब मौजूद था। फिर मैंने कहा—'टाकी' में कोई कला नहीं है, 'साइलेंट' में, असल में कला होती है। ऐक्टिंग का मजा तो वहीं आता है। मनोभावों का चित्रण, अहाहा! कैसा होता है। अकबर ने ठीक कहा है—

'हमारा उस दिले-पुर-फन पे कुछ काबू नहीं चलता।
जहाँ बंदूक चलती है, वहाँ जादू नहीं चलता।"

पहले दलीलें थीं, फिर त्योरियों पर बल आया। चंचल की आवाज में लगीं कहने—"तुमको ले जाना नहीं मंजूर है,

तो साफ-साफ कह दो अपना तो मालूम नहीं, महीने में कितनी बार देख आते हो। आज बोरिस कारलाफ है। कल ग्रेटा गारबो है, परसों यह है, वह है। आज जब एक बढ़िया हिंदी का खेल आया, तब सिनेमा में लाख ऐब होने लगे।" फिर धीरे से सर सैमुएल होर की आवाज में बोलीं—'कल मनोरमा के यहाँ पार्टी है। वहाँ सभी आएँगी। कोई कहेगी, दूसरे ऐक्ट में सुलोचना ने बड़ी खूबी की ऐक्टिंग की, और मैं उल्लू की तरह मुँह देखूँगी। तुमको जरा भी हमारी 'प्रेसटिज' का खयाल नहीं है।"

मैंने कहा—"मैं इस घर का होम-मेंबर हूँ। जो मैं कहूँगा, वह होगा। परिवार के हक में इस समय सिनेमा जाना लाभकर नहीं है।" श्रीमती बोल उठीं—"अच्छा, तो मैं इस घर की 'फाइनेंस मेंबर' हूँ। आगे से बजट में 'कट'-ही-'कट' होगा।" यह जबरदस्त धमकी थी। असेंबली के सदस्यों के हाथों में भी ऐसा हथियार नहीं है। वह सफेद चाँदी का गोला टुकड़ा ऐसा जादू-भरा है कि इसके लालच से जिसे चाहे लुभा लो। मैंने हँसकर कहा—"बात यह है कि इस समय महीने का आखीर है, रुपए कहाँ से आएँगे?" इस पर मुस्किराकर बोलीं—"अब रुपए का बहाना करने लगे।" मैं कसम खाकर कहता हूँ, ऐसी मुसकान पर मुसोलिनी भी दिल मसोसकर नाचने लगते, और मेरी क्या हकीकत! मैं चुप था।

अरेबियन सागर में जहाज के ऊपर लहरों की बहार ले रहा था। एकाएक खामोशी टूटी, और आप बोलीं—अच्छा, फाइनेंस मेंबर प्रबंध करेगा।" फिर क्या था, टाँगा आया और हम लोग 'चित्रा' के फाटक पर चट से पहुँचे।

चार रुपए उन्होंने मेरे हाथ में रक्खे और मैं टिकटवाली खिड़की की ओर रवाना हुआ। सामने गया, दाएँ गया, बाएँ गया पर लोगों ने खिड़की को ऐसा घेर रक्खा था जैसा आजकल नौजवानों के मुँह को मुँहासे। मैं कोई जेनरल था नहीं, स्कूल में भी ड्रिल के समय फाटक के बाहर तमोली की दूकान पर रहता था। भीड़ में घुसना भरतपुर का किला लेना था। उधर श्रीमती खड़ी थीं। क्या करता, उनका भी लिहाज था। परंतु वहाँ एक टिकट लेकर निकलता, तो दूसरा घुस जाता। मेरे बाद के आनेवाले भीतर घुसकर खिड़की के करीब पहुँच गए, और मैं हिंदोस्तान की भाँति जहाँ-का-तहाँ रह गया अंत में कुछ हिम्मत करके लौट आया, और कहा—"अब कल या सेकंड शो में देखा जायगा। इस समय तो बड़ी भीड़ है। किसी भले आदमी का खिड़की तक गुजर नहीं है।" मालूम पड़ता है यह वाक्य श्रीमतीजी को बुरा मालूम हुआ। बोलीं—"अपने को आदमी साहक कहते हो। इतने आदमी टिकट लेकर चले गए, तुम रह गए! जो सिनेमा का टिकट न ले सका, वह स्वराज्य क्या लेगा। लाओ रुपए, मैं लाती हूँ।"

अब आगे कोई उत्तर न था। मैं फिर खिड़की की ओर लौटा। बीवी के कहने से कुछ तो जोश आ ही गया था, और मैं समझ चुका था कि युद्ध के मैदान में जा रहा हूँ। किसी तरह घुसा। बीवी का हिम्मत दिलाना कुछ और ही चीज है। मेरा यह निवेदन है कि जितने विवाहित लोग हैं, उन्हें यदि किसी ऐसे खतरे की जगह जाना है, जहाँ जाने का डर है, तो बीवी से जरा साहस का पुट ले लिया करें। अवश्य सफलता मिलेगी।

मैं भीड़ में घुस गया, परंतु खिड़की तक पहुँचने में अभी देर थी। मालूम होता था, चारो ओर से कसा हुआ जा रहा हूँ। दाहने ओर एक सज्जन (?) की केहुनी मेरे सीने में धँसी जा रही थी। मैं ज्यों-ज्यों एक आध इंच बाएँ ओर सरकता था, केहुनी और धँसी आ रही थी। मेरी पसली की हड्डियों और सीने के चमड़े के बीच मांस का उतना ही हिस्सा है, जितना हिंदोस्तानियों को स्वराज्य मिला है। माईक्रासकोप से देखने पर शायद मांस की एक आध तह दिखाई दे। मुझे विश्वास हो गया कि पसली की दो-एक हड्डियाँ आज टूटीं, और फेफड़े में पंक्चर हुआ। इतने में एकाएक फ्रांस की राज्य-क्रांति की तरह हलचल हुआ। एक आदमी टिकट लेकर निकलने लगा। मैं भी आगे हो गया। केहुनी के इंजेक्शन से जान बची, परंतु तुरंत ही मालूम हुआ कि मुझे फाँसी हो रही है। मेरे दुपट्टे का एक छोर पीछे फँस गया था,

और मेरी गर्दन तथा कपड़े की मजबूती की परीक्षा हो रही थी। सारे मिल और करघेवाले धन्यवाद के पात्र हैं, जो कमजोर कपड़े बुना करते हैं। अगर मेरा दुपट्टा मजबूत होता, तो मैं वहीं ढेर हो चुका था। दुपट्टे के एक चौथाई हिस्से ने पूर्ण असहयोग कर दिया। जान बची, समझा, दूसरा विवाह हुआ।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने टिकट ले लिया। हाँ, इतना अवश्य किया कि दो-दो रुपए का टिकट न लेकर एक-एक रुपए का लिया। टिकट लाकर मैंने श्रीमती के हाथों में दिया। पसीना इतना बह रहा था, मानों मैं स्पंज हूँ, और कोई निचोड़ रहा है। श्रीमतीजी ने पूछा—"यह एक-एक रुपए का क्यों लाए?" मैंने कहा—"मैंने कॉलेज में अर्थ-शास्त्र पढ़ा है, उसी का उपयोग किया है। इन दो रुपयों से फिर दूसरा तमाशा देखा जायगा।" ज्योंही सीढ़ी की ओर मैं घूमा, श्रीमतीजी ने मेरे चरणों की ओर देखकर कहा—"और यह क्या?" नजर नीचे ले जाता हूँ, तो दाहने पाँव का जूता गायब। अभी पहली तारीख को फ्लेक्स का फुल स्लीपर खरीदा था। मुश्किल से तीन सप्ताह हुए होंगे, और पहना भी कम था। आधा दाम भी देना बाकी था। फिर भीड़ में घुसना पड़ा। अँगरेजी में कहावत है, 'प्रैक्टिस मेक्स परफेक्ट।' एक बार हो आने से कुछ हिम्मत हो गई थी।

फिर अपना जूता था, वह भी नया, और जिसका आधा ही मूल्य दिया गया था। मैं फिर घुसा और, किसी-न-किसी प्रकार लोगों की त्योरियों की परवा न करके, जूता ढूँढ़ लाया। उसकी क्या हालत थी? दो तो बिलकुल सोल से मिल गया था। सारे जूते की शक्ल सूखे पराठे की-सी हो गई थी—जूता ब्राउन था। किसी तरह से उसे पैर में डाला। ऊपर पहुँचा। जगह मिल गई—जरा कोने में। मगर वहाँ से दिखाई देता था। दो भाग 'कामिक' के तब तक समाप्त हो चुके थे। श्रीमतीजी बोलीं—"तुम्हारी वजह से पूरा 'कामिक' भी न देख पाई।"

हम लोग बैठे थे। और एक बड़ा सुंदर गाना अरंभ हुआ कि नीचे चार आनेवाले दर्जे से किसी ने जोर से चिल्लाकर पुकारा—"अरे इलहिया, अली जनवा कहाँ है?" इतने में गाने का एक चौथाई समाप्त हो गया। उधर अलीजान के पुकारनेवाले चुप हुए ही थे कि पीछे 'चें' से किसी का बच्चा चिल्लाया, जैसे बिल्ले पियानों की रीड़ किसी ने एका-एक दबा दी हो। बच्चे को उसकी माँ चुप कराने के लिये और भी बोलने लगी, सारा गाना इसी में खत्म हो गया। रुपए का जो टिकट खरीदा था, वह एक एक मिनट अखर रहा था। इसके बाद कोई मजाक का पार्ट कर रहा था। उसने कोई ऐसी बात कही, जिससे बेतरह हँसी आई। सब लोग हँसी में लोट-लोट

तमाशा न देखूँगी।" मैंने बहुतेरा कहा। जोर से कुछ कह नहीं सकता था। धीरे-धीरे समझाता था। परंतु वह उठीं और बाहर की ओर चलीं। इंटरवल समाप्त होने में दो ही तीन मिनट रहे होंगे। मैंने बाहर बहुत समझाया। तीसरी घंटी बज चुकी थी। मैंने कहा—"अच्छा चलो, दूसरी सीट पर बैठा जाय।" इसपर वह किसी प्रकार राजी हुईं। आकर हम लोग दूसरी जगह बैठे।

बीच में जब प्रकाश हुआ, तब मैं क्या देखता हूँ कि वही स्त्री मेरी दाहनी ओर बैठी है। मैं और मेरी बीवी साहबा, दोनों अवाक् हो गए।

वह स्त्री बोल उठी—"अरे, मैंने समझा कि आप लोग वहाँ बैठेंगे, इसलिए मैं यहाँ चली आई।"

उस दिन से जब मैं सिनेमा का नाम लेता हूँ, श्रीमती कहती हैं—"मैं जानती हूँ, तुम क्यों सिनेमा जाते हो।" और, जहाँ तक मेरे प्रोग्राम में विघ्न-बाधा हो सकती है, उपस्थित करती हैं।

—

गए। मैंने उसी भाव में अपना हाथ पटका, मगर मेरा हाथ बजाय मेरे पैर पर आने के मेरे दाहिनी ओर की कुर्सी पर बैठी हुई एक स्त्री की जाँघ पर थप से जाकर बैठ गया। मैं तो घबरा गया। उसने बड़े जोरों में कहा—"ह्वाट्स दिस ?" अर्थात् यह क्या ? उसकी आवाज सुनकर मेरी श्रीमती की भी निगाह उधर गई। पीछे बैठनेवाले भी समझ गए, कोई बात है। मुझे काटो तो लहू क्या, पानी भी न निकलता। मैंने बड़ी माफी माँगी। वह स्त्री चुप हो गई।

इंटरवल में मैंने फिर अनेक शब्दों में क्षमायाचना की। उसने कहा—'कोई बात नहीं, जाने दीजिए।" प्रकाश में उसका चेहरा देखने पर पता चला कि उसकी अवस्था कोई इक्कीस-बाईस साल की होगी। गोरा रंग, गोल चेहरा बतला रहा था कि कोई पंजाब का इमपोर्ट है। मैं डरा कि कहीं इसके साथ कोई हो, और मेरी हरकत को समझ ले कि जान-बूझ-कर ऐसा किया, तब तो बिना पैसा दिए सर की 'शेविंग' हो जाय। परंतु देखने में कोई उसके साथ न दिखाई दिया।

उससे जब मैं बहुत क्षमा-याचना की बातें करने लगा, तब मेरी श्रीमती बोलीं—"अरे रहने भी दो कि सारी डिक्शनरी आज ही खत्म कर दोगे ?"

यह सुनकर उसने हँस दिया। श्रीमतीजी को शायद यह बहुत ही नागवार मालूम हुआ। उन्होंने कहा—"अब मैं

प्रोफेसर पांडुरंग खरगटकर

हमारे देश में 'जीनियस' का अभाव नहीं है, अभाव है कद्रदानों का। कितने जगमगाते हीरे कोनों में पड़े हैं, कोई प्रकाश में लाता ही नहीं। मालूम नहीं यह देश का दुर्भाग्य है। अथवा उन प्रखर प्रतिभावालों का। हम आपके सामने आज एक ऐसे व्यक्ति का परिचय रखते हैं जो दूसरे देशों में होता तो न्यूटन और अरस्तू होता, परंतु हमारे देश में सिवाय हमारे और हमारे ही ऐसे विद्वानों को छोड़कर कोई उन्हें जानता ही नहीं। परंतु हमारा काम है समुद्र की गहराई से मोती निकालना। मतलब, मैं पनडुब्बा नहीं हूँ, मैं हूँ रिसर्च-स्कालर। लोग पुस्तकें ढूँढ़कर और कब्रों में से गड़े मुरदे उखाड़कर संसार के सामने आए दिन एक-न-एक बात रख देते हैं। उनमें खूबी यह होती है कि आज एक व्यक्ति बड़े

जोरों से अपनी बात ठीक साबित करता है तो कल दूसरा व्यक्ति उसी बात का खंडन उतनी ही शक्ति से करता है। कुछ लोगों को इस युद्ध में बड़ा मजा आता है, और समाचार-पत्रों को पेज रँगने के लिये मसाला मिल जाता है। मेरा सिद्धांत दूसरा है। भवभूति ने रघुवंश में लिखा है कि "दि प्रापर स्टडी आफ मैन इज़ मैनकाइंड" अर्थात् मनुष्य के अध्ययन का सर्वोत्तम विषय मनुष्य-जाति है।

मैं इस कथन का अनुमोदन और समर्थन करता हूँ। मैं मनुष्यों में रिसर्च करता हूँ। इसी रिसर्च में मैंने प्रोफेसर चपरगटकर को खोज निकाला है।

प्रोफेसर महोदय के बाप-माँ का पता मुझे नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके माँ-बाप थे ही नहीं। उनकी कुंडली देखने पर भी और उनसे कई बार पूछने पर भी इसका पता न मिला। मगर मैं उस बात का कायल हूँ जो कि एक अंग्रेज युवक ने अपनी प्रेयसी से कही थी। जब उस युवक ने अपनी प्रियतमा से विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने कहा—मेरी माता से मिलिए। इसपर युवक ने उत्तर दिया 'मुझे उनसे विवाह नहीं करना है।' मुझे भी प्रोफेसर साहब के माँ-बाप से वास्ता नहीं है, न आपको ही। इतना अवश्य हम कह सकते हैं कि इनकी माता या इनके पिता बड़े चतुर और भविष्य-वक्ता अवश्य थे। उनका नाम प्रोफेसर महोदय को

बिलकुल फिट होता था। बिलकुल पीला रंग, छिपकिली-सा पतला और फुरतीला शरीर, और गड्ढों में धँसी छोटी-छोटी आँखें, उनके नाम को सार्थक कर रही थीं।

प्रोफेसर साहब कहाँ पढ़ाते हैं, मैं न बताऊँगा। जैसे अपनी थीसिस को लोग चुराकर और छिपाकर रखते हैं, उसी प्रकार मेरा भी इरादा है कि लोग उनसे परिचय न प्राप्त करें। यों तो उनके विद्यार्थी उन्हें जानते ही होंगे, पर उनका जानना और है। प्रोफेसर साहब पढ़ाते कम हैं, रिसर्च अधिक करते हैं। और रिसर्च क्या करते हैं, यह अभी तक साधारण लोगों को पता नहीं। वह गणित द्वारा ईश्वर का अस्तित्व साबित करना चाहते हैं। एक दिन मुझसे कहते थे—जिस दिन मैं इसे साबित करके संसार के संमुख रख दूँगा, उस दिन से कैंट, हीगल और आइंसटीन का कोई नाम भी न लेगा।

पहले-पहल जब मैं प्रोफेसर साहब से मिला, तब वह हवा में अपने दाहिने हाथ की उँगलियाँ नचा रहे थे, जैसे लखनऊ की भठियारिनें अपने वाग्युद्ध के समय हाथ चमकाया करती हैं। उनकी नए फुटबाल के समान खल्वाट खोपड़ी पर दो खटमल क्रीड़ा कर रहे थे। उनकी आँखें किसी सुदूर नीरव क्षितिज गगनांगन में विचरण कर रही थीं। मैं एक घंटा बैंतीस मिनट और ग्यारह सेकंड तक बैठा रहा। उनका हाथ नहीं थका, उनकी आँखें पथराए नेत्र के समान एकटक थीं।

बीच-बीच में उनके मुख से दो-एक शब्द निकलते थे जिनका समझना मेरी समझ के बाहर था। एक बार उन्होंने कहा 'जीरो' फिर थोड़ी देर के बाद उनके मुख से निकला 'इन-फ्रेनिटी'। फिर कहा 'यस'—फिर बोल उठे 'नो'। फिर मुस-करा दिए, फिर भौंहें तन गईं। मैं यह सब देख रहा था। मेरे पास कोई कैमरा न था, नहीं तो इसी परिचय के साथ उनका फिल्म भी आपकी सेवा में रखता। थोड़ी देर के बाद उन्होंने मेरी ओर निगाह फेरी। मैंने नमस्कार किया। प्रोफे-सर साहब बोल उठे—सापेक्षवाद परमाणुवाद को काट रहा है, जैसे पागल कुत्ता किसी भले आदमी को काट ले। सांख्य के सिद्धांत की विलक्षणता की विराटता नष्ट हो रही है... परमेश्वर जीरो भी है, एक भी है।

मेरा विचार हुआ कि किसी डाक्टर को खबर दूँ। किसी समय स्काउट रह चुका था। संसार की भलाई करना हमारा धर्म है। इतने में एक नौकर आया और बोला—हुजूर, भोजन तैयार है। प्रोफेसर साहब ने उत्तर दिया—"हाँ, भोजन परमाणुओं का संकलन है, ऐटमों का समूह है। मगर इनफिनिट है, इनफिनिट। भोजन परमात्मा है, परमात्मा भोजन है। भोजन जीरो है, जीरो भोजन है।" मैंने उपयुक्त अवसर समझकर कहा—अब आपका भोजन का समय हो गया है, मुझे आज्ञा दीजिए। इसपर फिर प्रोफेसर साहब

बरसने लगे—"आप और भोजन, मैं और भोजन। मैं भोजन हूँ आप भोजन हैं" मेरे खड़े होने पर प्रोफेसर महोदय भी खड़े हो गए। कुछ सोचते हुए टेबुल पर ऐसा जोर का हाथ मारा कि हाथ कलमदान पर पड़ा और दावात उछल पड़ी और उनकी नाक का चुंबन करती हुई, मेरी सफेद नई धुली हुई कमीज से होली खेलती हुई धराशाई हुई।

इतने पर भी प्रोफेसर साहब अपनी ही धुन में मस्त थे। मैं प्रणाम करके चला आया। उन्हें मालूम हुआ कि नहीं, इसमें संदेह है। मुझे प्रोफेसर साहब से मिलने में खास मजा आता था। कई दिनों तक प्रोफेसर साहब से भेंट नहीं हुई थी। एक दिन संध्या समय मैं टहलने जा रहा था। राह में एक स्थान पर भीड़ देखकर ठहर गया। देखता क्या हूँ कि बीच में प्रोफेसर साहब को चारों ओर से घेरे हुए कई लोग खड़े हैं। बड़ी मुशकिल से पूछने पर एक व्यक्ति बोल उठा—भला ऐसा कोई करता है! देखने में तो भले आदमी मालूम पड़ते हैं और यह करतूत!! प्रोफेसर साहब को मैं जानता था कि वह कोई ऐसी बात नहीं कर सकते थे जिससे स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से नीचता का प्रदर्शन हो। मैंने उनसे पूछा—प्रोफेसर साहब, क्या बात है? प्रोफेसर साहब बोले, देखिए मैं कुछ आवश्यक चिट्ठियाँ छोड़ने निकला था। एक स्त्री की ओर इशारा करके बोले, यह लाल कपड़ा ओढ़े घूँघट काढ़े खड़ी थी। मैंने

समझा लाल रंग का पोस्ट बक्स है। मैंने घूँघट में चिट्ठियाँ डाल दीं। इन्होंने क्यों लाल रंग का कपड़ा ओढ़ रखा था। मेरी डाक भी निकल गई और इन लोगों को लाल रंग की हानियाँ समझाने में मेरा बड़ा हर्ज हुआ।

मुझे बड़ी हँसी आ रही थी। मैंने किसी प्रकार लोगों को समझा-बुझाकर हटाया। तब से अनेक बार प्रोफेसर साहब से मिलने का अवसर मिला है। अभी तक उनका रिसर्च पूरा नहीं हुआ, परंतु दिन-प्रति दिन उनकी विचित्रता बढ़ती जाती है। एक दिन आप कालेज में उलटा कोट पहनकर चले गए। लड़के देखकर बराबर मुसकराते रहे परंतु आपको कुछ भी ध्यान नहीं रहा। इस प्रकार उनके कामों में कोई-न-कोई नई बात अवश्य दिखाई देती थी। जिसे देखकर लोग उनका मजाक उड़ाते थे परंतु वह अपने गणित द्वारा परमात्मा का अस्तित्व साबित करने में लगे ही रहे।

निबंध का पर्चा

मार्च का महीना था। परीक्षा के लिये तैयारियाँ हो रही थीं। टेक्स्ट बुकों को बूढ़े बापों के समान लोगों ने एक नुमाइश की चीज समझकर अलग रख दिया था, और जिधर देखो, उधर नई दुलहिनों की भाँति नोटों की पूछ थी। आगरा, प्रयाग और कानपुर से चिट्ठियाँ आती थीं तो ऐसी उत्सुकता से खोली जाती थीं, मानो कमसिन बीबी ने लिखी है। किस प्रोफेसर ने अपने कालेज में क्या लिखाया है, इसी की विशेष चिंता रहती थी। उस विद्यार्थी को हम लोग निरा बछिया का ताऊ समझते थे, जो अपना अमूल्य समय सारी पुस्तकें पढ़ने में बिताता था। जब आसानी से हम पास हो सकते हैं, डिगरी मिल सकती है,

तब छ-छ सौ पेजों की पुस्तकों से दिमाग की बुर्दशा करना कौन-सी बुद्धिमानी है। यह भी किसी भले आदमी द्वारा पता चल गया कि अमुक विषय के पर्चे के परीक्षक अमुक प्रोफेसर हैं। उनके बारे में जितनी बातें जानी जा सकती थीं, सबका पता लगाया गया। अंग्रेजी के निबंध [Essay] के पर्चे का पता लगा कि कानपुर के ठाकुर..... सिंह परीक्षक हैं। फिर क्या था। उनके रिश्तेदार और रिश्तेदार के रिश्तेदार और रिश्तेदार के रिश्तेदार के रिश्तेदार के यहाँ प्रत्येक डाक से पत्र आने लगे। पाँच-पाँच सात-सात सालों से जहाँ एक पुर्जे का नाम नहीं, वहाँ आठ-आठ पेजों के बड़े घनिष्टता-प्रदर्शक पत्र भेजे गए। उत्तर भी विचित्र-विचित्र आने लगे। निबंध के पर्चे में मालूम नहीं कौन विषय पूछा जाय। और विषयों में तो किसी न किसी रूप में पुस्तक के आधार पर प्रश्न आते हैं, पर निबंध में तो कोई क्रम ही नहीं है। यह विषय तो धारा १४४ सा व्यापक और भाषूकों की बेवफाइयों के समान अगाध है। और इस विषय के परीक्षक का भी ठीक ठीक पता लग गया। जिसके एक संबंधी भी जान-पहचान के मिल गए थे। फिर क्या पूछना था। और विषयों के परीक्षकों का भी पता चला था परंतु निबंध का सबसे पहले। मेरे कमरे के बगल में एक सज्जन रहते थे। उनकी छोटी साली के देवर के चचिया

ससुर के फूफा के परीक्षक महोदय रिश्ते में साढ़ू होते थे। हम लोगों ने उनसे कहा—भाई, तुम्हारी परीक्षक महोदय से इतनी नजदीकी रिश्तेदारी है, भला अब क्या पूछना है, तुम्हारी सहायता से हम लोगों का बेड़ा भी पार लग सकता है।

यह सज्जन भी हमारे ही दर्जे में पढ़ते थे। इनका नाम था दूरबीन सिंह। जाति के ठाकुर थे। पहले तो ठाकुर साहब ने बड़े सिद्धांत बघारे। कहा—'छोटी छोटी बातों में रिश्तेदारों से सहायता लेना और उनके एहसान का बोझ उठाना मेरे सिद्धांतों के विपरीत है।" परंतु जब ऊँचा-नीचा समझाया गया; तब राजी हो गए। शाम को हम लोगों ने उन्हें एक स्टेशनरी की दूकान से बहुत हाई क्लास के लेटर-पेपर और लिफाफे खरीदवाए। रात को सात पत्र भिन्न-भिन्न मजमून के भिन्न-भिन्न रिश्तेदारों के यहाँ भेजे गए। प्रोफेसर साहब का रहन-सहन, उनका मिजाज, कौन-कौन विषय प्रिय हैं, किस लेखक की पुस्तकें अधिकांश पढ़ते हैं, स्वभाव मृदुल है अथवा कठोर, सब बातें पूछी गईं। एक पत्र अलग से ऐसा भी कानपुर भेजा गया जिसमें पूछा गया था कि किस-किस विषय पर उन्होंने निबंध लिखाए हैं।

ठाकुर दूरबीन सिंह के संबंधियों के यहाँ से जो पत्र आए उन्हें मनोविज्ञान की अमूल्य सामग्री समझकर मैंने रख छोड़े हैं। उनमें से केवल दो पत्र यहाँ उद्धृत करता हूँ। ऐसे बहु-

मूल्य पत्रों को आजकल के डिप्रेशन के जमाने में मैं यों ही नहीं दे देना चाहता।

श्री दूरबीन सिंहजी,

तीन-चार दिन हुए आपका एक पत्र मिला। पहले तो मैं घबराया, समझा, किसी पागलखाने से छूटे हुए सज्जन ने मन-बहलाव किया है। परंतु बात ही बात में मौसी की बुआ से पता चला कि आप मेरे रिश्तेदार हैं। भला, आपको ऐसा भूल जाना उचित था? कभी-कभी तो याद करते। दूर ही के सही, आखिर हैं तो हम लोग रिश्तेदार। जो बातें आपने पूछी हैं; भला मैं क्यों न लिखूँगा। आखिर जब हमसे आपसे संबंध है तब किस दिन के लिये यह बातें छिपाई जायँ। प्रो०.....सिंह परीक्षक हैं, तो आप पास ही हो जायँगे। मुझे तो यह मालूम ही नहीं था कि एफ० ए० के लड़कों को वही पास करते हैं, नहीं तो मैं किसी विधि से एंट्रेंस पास कर लेता, फिर एफ० ए० तो सरल ही था, जब इन्हीं के हाथों में बात थी। आप शायद नहीं जानते, हमें प्रोफेसर साहब बहुत मानते हैं। बड़े दिन की छुट्टियों में एक बार उनके घर गया था। घर के सब लोग चाय पी चुके थे। मुझसे कहने लगे कि चाय तो समाप्त हो चुकी है, और बनवाऊँ? मैंने कह दिया—'नहीं'। मेरा कहना मान गए, चाय नहीं बनवाई। मेरा कहना बहुत मानते हैं, आप घबराइए मत। इनके बारे

में बहुत कुछ लिख सकता हूँ। प्रो० साहब को टमाटर बहुत पसंद है। एक वक्त वही खाकर रहते हैं। दूसरे दिन हजामत बनाते हैं। वैलेट ब्लेड इस्तेमाल करते हैं। एक ब्लेड दो महीने तक चलाते हैं। परेड पर घूमने जाते हैं। 'की' से रटकर पढ़ाते हैं; पढ़ने के लिये पुस्तकें नहीं खरीदते। लीडर भी कामन रूम में बैठकर पढ़ लेते हैं। शायद इतनी बातों से काम चल जायगा। यदि अपने संबंध में कुछ पूछें तो इतनी बातें लिख दीजिएगा। बहुत प्रसन्न होंगे। आपका परीक्षा में सफल होना निश्चय है। कापी पर लिख दीजिएगा कि मैं इस प्रकार से आपका रिश्तेदार हूँ। रिश्तेदारी लिख देना आवश्यक है। इसीलिए देखिए अंग्रेजों के नाम के साथ ही बाप-दादों का नाम भी लिखा रहता है। मौका-बे मौका मालूम नहीं, कब काम पड़े। घबराइएगा मत। हाँ, दो सेर खमीरा तंबाकू और एक थान काशी सिल्क भेज दीजिएगा। मैं उनसे इसका जिक्र कर दूँगा।

आपका,
बिरोऊ सिंह

दूसरा पत्र ठाकुर दुखीन सिंह की साली के ऊपर था। ठाकुर साहब ने अपनी साली को लिखा था। उन्होंने अपने देवर से जिक्र किया। उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया। आप हिंदी के बड़े लिक्खाड़ और संस्कृत के आकंठमग्न पंडित हैं।

अपनी भाषा का आदर्श भाषा समझते थे। आपने लिखा:—

श्रीठाकुर दूरबीनसिंह समीपेषु,

महानुभाव,

पत्र करतलगत हुआ। आनंदानुभव का व्यतिरेक हुआ आपका और अपना परस्पर अनन्य भावेन संबंध प्रपन्न करके हृदय प्रफुल्लप्राय हो गया। आपने जो महामहोपाध्याय प्रोफेसर-प्रवर आचार्यवर ठाकुर-वंशावतंस श्री ६ सरस्वती-सूनु प्रो.....सिंह के संबंध में वार्ता की है, उसका उत्तर इतने अल्प समय में उद्भावन करना असंभव है। मैं दो तीन वासरों में उनके यहाँ गमन करूँगा। तथापि मेरे मनसा-सरोवर में असंदिग्धरूपेण यत्किंचित जो व्याप्त है, उसे मैं आपके हितार्थ प्रसारित करता हूँ। महानुभाव का स्वभाव सुधा की कलाई और मखानामिश्रित मलाई के समान कोमल, श्री बिहारी सतसई के समान मनोरंजक है। नासूर के समान दया का स्रोत सदा बहा करता है। मैं उनसे आपके संबंध में कहूँगा। घबराइएगा नहीं। मैं विविध तर्क-वाद-विवाद संगृहीत करके उनकी बुद्धि प्रक्षालन करूँगा कि निकटस्थ कुटुंबीजन को परीक्षा में अभ्युदय करना ही सत्कर्म है।

प्रेम-पूर्ण,

ठाकुर भूसलसिंहस्य

जिस समय ये दो पत्र मुझे सुनाए गए हँसी नहीं आई। मुझे इतना क्रोध आया कि सामने यदि पत्र-लेखक महोदय दिखाई देते तो पूरी मरम्मत कर देता। कहाँ यहाँ प्रतीक्षा में दिन युग हो रहे थे, प्रत्येक घड़ी विकलता की अव्यक्त सीमा पर पहुँच रही थी और कहाँ यह पागलपन का नाटक अभिनय हो रहा था। और स्थानों से जो पत्र आए उनमें भी कोई तथ्य की बात तो थी नहीं, किसी ने बनारसी साड़ी माँगी तो किसी ने पीतल की थालियाँ पारसल करने को लिखा। एक-एक पत्र पढ़कर दस-दस डिगरी ज्वर चढ़ आता था।

केवल एक सज्जन ने कानपुर से लिखा था कि जिस सज्जन के बारे में आप पूछ रहे हैं, वह बड़े कंजूस हैं। सवेरे गिनकर तीन बादाम का जलपान करते हैं। एक बार एक बादाम फोड़ने से उनमें दो गिरियाँ निकल आई थीं। उनकी स्त्री ने वैसा ही जलपान के लिये रख दिया। चार बादाम डालने से स्त्री के ऊपर वह सख्त नाराज हुए और संध्या को भोजन नहीं किया। इतना मैं बता सकता हूँ'। इतना तो हम लोगों को ब्लेड वाली कथा से पहले ही पता लग गया था। कोई नई बात न थी।

और विषयों के संबंध में भी कितने पत्र आए। कहाँ तक गिनाऊँ। किसी ने लिखा यह पुस्तक पढ़ लो; किसी ने कहा

उस नोट को घोख डालो। भला इतनी फ़ुरसत कहाँ थी। पेज लिखनेवाले मूर्ख को यह न सूझा कि पढ़ना ही होता तो तुम्हें क्यों पूछता यहाँ तो यह चाहते कि प्रश्न आ जायँ, और उनका उत्तर देख लें रात की रात, दूसरे दिन कापी पर लाकर उड़ाल दें। दिमाग में यह सब फ़ज़ूल निरर्थक वस्तुएँ नहीं भरी जा सकतीं। परंतु किसी ने प्रश्नों की लिस्ट न भेजी। दो चार ने भेजी भी तो इतनी लंबी, मानो किसी पब्लिक कमीशन में गवाही देनी है।

परंतु देखिए विधना कितना रहस्यमय है। परीक्षा का दिन आ गया। पहले पर्चे में जो 'डिट' लोगों ने भेजा था उसमें से कसम खाने के लिये एक शब्द क्या एक अक्षर भी दिखाई न दिया। दूसरे पर्चे का भी वही हाल रहा। तीसरे दिन निबंध का पर्चा आया। वह इस प्रकार था—

निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर निबंध लिखो:—

(१) विश्वशांति का रहस्य।

(२) साहित्य और काव्य।

(३) संसार के शासन में प्रकृति का मितव्य।

मैंने जब प्रश्न पढ़े और तीसरे विषय पर निगाह पहुँची, फेल हुए मोटर की भाँति आँख ठहर गई। चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा दौड़ गई। विचार हुआ, देखो, कैसा घुमा-फिराकर पूछा है। मैं समझ गया यही ठाकुर साहब परीक्षक

हैं। कंजूस है ही, अपना प्रिय विषय पूछ डाला है। तुरत तीसरे विषय पर कलम दौड़ा दी। निबंध इतना सोचकर लिखा था कि शायद पंडित श्यामविहारी मिश्र ने इतना सोचकर संमेलन का भाषण भी न लिखा होगा। मुझे अक्षरशः वह याद है। उसका संक्षिप्त पाठकों के अवलोकनार्थ उपस्थित है।.....प्रकृति सदा से मितव्ययी रही है। आवश्यकता रहने पर भी मनुष्य को ही आँखें दीं। यदि दो आँखें पीछे भी बना दी जातीं, तो कोई हानि न थी। बल्कि मनुष्यों को लाभ होता। थियेटर और सिनेमा में सामने तमाशा भी देखते जाते और पीछे जो लोग बैठे हैं, उन्हें भी देखते जाते; नहीं तो कभी-कभी गरदन घुमाकर देखना पड़ता है। कवियों ने बारबार कहा है कि रोएँ सब जीभ होते तो प्रत्येक रोएँ से परमात्मा की प्रशंसा गाते। परंतु परमात्मा ने इतनी जिह्वा नहीं बनाईं। अपने लाभ की संभावना होने पर भी परमात्मा, अथवा प्रकृति, ने एक ही जबान बनाई। क्या हर्ज था यदि एक जीभ नमकीन के लिये और एक मीठे रस का पान करने के लिये बनाई गई होती। दोनों का मजा साथ-साथ लिया जाता। यह प्रकृति की आखिर कंजूसी ही है न!

जब गूलर के पेड़ में फूल की आवश्यकता न थी तब आम के पेड़ में पत्तों की क्या जरूरत थी। सब फल ही फल

बनाती। परंतु प्रकृति ने इसमें बड़ी कंजूसी की, नहीं तो लँगड़ा आम पाँच रुपए सैकड़े क्यों बिकता। सभी पेड़ों में फल ही लगते, पत्ते क्यों फिजूल ढेर-के-ढेर बना रक्खे हैं।

जब प्रकृति इतनी कंजूस है तब मनुष्य के लिये अति आवश्यक है कि कंजूस हो। कंजूस होना धर्म का एक लक्षण है। मनु ने जो धर्म के दस लक्षण गिनाए हैं उनमें लोग इंद्रिय-निग्रह भी कहते हैं। अभी-अभी महेंजोदरों में एक ताम्रपत्र मिला है। जिसे डाक्टर प्राणनाथ ने पढ़ा है। वह कहते हैं कि मनु के इसी श्लोक में 'इंद्रिय' के स्थान पर 'द्रव्य-निग्रह' अंकित है। हमें भी यही ठीक मालूम होता है। जो राजा कंजूस नहीं उसका खजाना खाली, जो देश कंजूस नहीं उसका दिवाला है। जो मास्टर कंजूस नहीं, उसके विद्यार्थी उसे अधिक जान जाते हैं। जो संपादक कंजूस नहीं उसके यहाँ लेखों का टोटा रहता है। जो प्रकाशक कंजूस नहीं वह पचीस परसेंट रायलटी देकर दीवाला पीट देता है, और जो पुस्तक-विक्रेता कंजूस नहीं वह पचहत्तर फी सदी कमीशन देकर डाट उलट देता है। जो कवि कंजूस नहीं उसके पास संपादक लोग पत्र नहीं भेजते। और जो कंजूस है, कभी कदाचित 'कुछ' भेज देता है, उसकी मेज संपादकों के पत्रों से वैसी ही ढकी रहती है जैसे बनारस की सड़क गर्द से। कहाँ तक कंजूसी का गुण गाया जाय। 'नाना पुराण निगमागम' इसी का गुण गाते हैं।

इतना लिखकर मैंने सोचा कि अपने बारे में भी लिखूँ ताकि प्रसन्न होकर कुछ नंबर अधिक दे दें। मैंने आगे लिखा—मैं पहले दर्जे का कंजूस हूँ' ब्लेड वाली बात याद थी। मैंने लिखा—"मैंने, दो साल हुए एक पनामा ब्लेड खरीदा था। उसीसे आजतक दाढ़ी खुरचता हूँ। अब वह सूई सा पतला हो गया है, पर जब तक कमर के समान बारीक न हो जाय मैं उसे त्याग नहीं सकता। इसी प्रकार से मेरे जूते का तल्ला धीरे-धीरे घिसकर गायब हो गया है। परंतु उसके ऊपर का भाग ठीक है। मैं उसी को पैर में कसकर बाँध लेता हूँ। चलते समय किसी दूसरे को पता नहीं चलता। सभी समझते हैं कि जूता ठीक है, और मेरा काम भी निकल जाता है। इस प्रकार प्रकृति की हम सहायता करते हैं और प्रकृति के राग में स्वर मिलाकर गाते हैं।

मुझे पूरा विश्वास था कि ऐसा मौलिक लेख देखकर परीक्षक का हृदय गद्गद हो जायगा। परंतु परीक्षा-फल निकलने के समय क्या देखता हूँ कि गजटवाले ने टाइप और रोशनाई में भी कंजूसी की है। मेरा नाम नहीं छापा है। मालूम पड़ता है कि परीक्षक महोदय ने मार्क देने में भी कंजूसी की होगी।

चिकित्सा का चक्कर

मैं बिलकुल हट्टा-कट्टा हूँ। देखने में मुझे कोई भला आदमी रोगी नहीं कह सकता। पर मेरी कहानी किसी भारतीय विधवा से कम करुण नहीं है, यद्यपि मैं विधुर नहीं हूँ। मेरी आयु लगभग पैंतीस साल की है। आज तक कभी बीमार नहीं पड़ा था। लोगों को बीमार देखता था तो मुझे बड़ी इच्छा होती थी कि किसी दिन मैं भी बीमार पड़ता तो अच्छा होता। यह तो न था कि मेरे बीमार होने पर भी दिन में दो बार बुलेटिन निकलते। पर इतना अवश्य था कि मेरे लिए बीमार पड़ने पर हंटले पामर के बिसकुट - जिन्हें साधारण अवस्था में घरवाले खाने नहीं देते-दवा की बात और है—खाने को मिलते। 'यू डी कलोन' की शीशियाँ सिर पर कोमल-करों से बीबी उँड़ेल कर मलती। और सबसे बड़ी इच्छा तो यह थी कि दोस्त लोग आकर मेरे सामने बैठते और गंभीर मुद्रा धारण करके पूछते, कहिए किसकी दवा हो रही है? कुछ फायदा है? जब कोई इस प्रकार से रोनी

सूरत बनाकर ऐसे प्रश्न करता है तब मुझे बड़ा मजा आता है और उस समय मैं आनंद की सीमा के उस पार पहुँच जाता हूँ जब दर्शक लोग उठकर जाना चाहते हैं पर संकोच के मारे जल्दी उठते नहीं। यदि उनके मन की तसवीर कोई चित्रकार खींच दे तो मनोविज्ञान के 'खोजियों' के लिये एक अनोखी वस्तु मिल जाय।

हाँ, तो एक दिन हाकी खेलकर आया। कपड़े उतारे, स्नान किया। शाम को भोजन कर लेने की मेरी आदत है, पर आज मैच में रेफ्रेशमेंट जरा ज्यादा खा गया था इसलिए भूख न थी। श्रीमतीजी ने खाने को पूछा। मैंने कह दिया कि आज स्कूल में मिठाई खाकर आया हूँ, कुछ विशेष भूख नहीं है। उन्होंने कहा—"विशेष न सही, साधारण सही। मुझे आज सिनेमा जाना है। तुम अभी खा लेते तो अच्छा था। संभव है, मेरे आने में देर हो।" मैंने फिर इनकार नहीं किया, उस दिन थोड़ा ही खाया। बारह पूरियाँ थीं और वही रोजवाली आध पाव मलाई। मलाई खा चुकने के बाद पता चला कि 'प्रसाद' जी के यहाँ से बाग बाजार का रसगुल्ला आया है। रस तो होगा ही। कल तक संभव है, कुछ खट्टा हो जाय। छः रसगुल्ले निगलकर मैंने चारपाई पर धरना दिया। रसगुल्ले छायावादी कविताओं की भाँति सूक्ष्म नहीं थे, स्थूल थे। एकाएक तीन बजे रात को नींद खुली। नाभि

के नीचे दाहिनी ओर पेट में मालूम पड़ता था, कोई बड़ी-बड़ी सुइयाँ लेकर कोंच रहा है। परंतु मुझे भय नहीं मालूम हुआ, क्योंकि ऐसे ही समय के लिये ओषधियों का राजा, रोगों का रामबाण, अमृतधारा की एक शीशी सदा मेरे पास रहती है। मैंने तुरंत उसकी कुछ बूँदें पान कीं। दोबारा दवा पी। तिबारा। पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा की सार्थकता उसी समय मुझे मालूम हुई। प्रातःकाल होते-होते शीशी समाप्त हो गई। दर्द में किसी प्रकार कमी न हुई। प्रातःकाल एक डाक्टर के यहाँ आदमी भेजना पड़ा।

रायबहादुर डाक्टर विनोदबिहारी मुकर्जी यहाँ के बड़े नामी डाक्टर हैं। पहले जब प्रैक्टिस नहीं चलती थी तब आप लोगों के यहाँ मुफ्त जाते थे। वहाँ से पता चला कि डाक्टर साहब नौ बजे ऊपर से उतरते हैं। इसके पहले वह कहीं जा नहीं सकते। लाचार दूसरे के पास आदमी भेजना पड़ा। दूसरे डाक्टर साहब सरकारी अस्पताल के सब-असिस्टेंट थे। वह एक एक्के पर तशरीफ लाए। सूट में वह ऐसा ही पहने हुए थे कि मालूम पड़ता था, प्रिंस आफ वेल्स के वेलेटों में हैं। ऐसे सूटवाले का एक्के पर आना वैसा ही मालूम हुआ जैसा लीडरों का मोटर छोड़कर पैदल चलना। मैं अपना पूरा हाल भी न कहने पाया था कि आप बोले, अजान दिखलाइए। प्रेमियों को जो मजा प्रेमिकाओं की आँखें

देखने में आता है, शायद वैसा ही डाक्टरों को मरीजों की जीभ देखने में आता है। डाक्टर महोदय मुसकराए। बोले घबराने की कोई बात नहीं है। दवा पीजिए। दो खुराक पीते-पीते आपका दर्द वैसे ही गायब हो जायगा, जैसे हिंदुस्तान से सोना गायब हो रहा है। मैं तो दर्द से बेचैन था। डाक्टर साहब साहित्य का मजा लूट रहे थे। चलते-चलते बोले, अभी अस्पताल खुला न होगा नहीं तो आपको दवा मँगानी न पड़ती। खैर, चंद्रकला फारमेसी से दवा मँगवा लीजिएगा। वहाँ दवाइयाँ ताजी मिलती हैं। बोतल में पानी गर्म करके सेंकिएगा। दवा पी गई। गर्म बोतलों से सेंक भी आरंभ हुई। सेंकते-सेंकते छाले पड़ गए। पर दर्द में कमी न हुई।

दोपहर हुआ, शाम हुई। पर दर्द ने मुझसे ऐसा प्रेम दिखलाया कि हटने का नाम दूर। लोग देखने के लिये आने लगे। मेरे घर पर मेला लगने लगा। ऐसे ऐसे लोग आए कि कहाँ तक लिखूँ। हाँ, एक विशेषता थी। जो आता, एक न एक नुसखा अपने साथ लेता आता था। किसी ने कहा, अजी, कुछ नहीं हींग पिला दो; किसी ने कहा, चूना खिला दो। खाने के लिये सिवा जूते के और कोई चीज बाकी नहीं रह गई जिसे लोगों ने न बताई हो। यदि भारतीय सरकार को मालूम हो जाय कि देश में इतने डाक्टर हैं तो निश्चय है कि सारे मेडिकल कालेज तोड़ दिए जायँ। इतने खर्च की

आखिर आवश्यकता ही क्या है ?

कुछ समझदार लोग भी आते थे, जो इस बात की बहस छेड़ देते थे कि असहयोग-आंदोलन सफल होगा कि नहीं, ब्रिटिश नीति में कितनी सचाई है, विश्व आर्थिक संमेलन में अमेरिका का भाषण बहुत स्वार्थपूर्ण हुआ इत्यादि। मैं इस समय केवल स्मरण-शक्ति से काम ले रहा हूँ। तीन दिन बीत गए। दर्द में कमी न हुई। कभी-कभी कम हो जाता था; बीच-बीच में जोरों का हमला हो जाता था, मानो चीन-जापान का युद्ध हो रहा हो।

तीसरे दिन तो यह मालूम होता था कि मेरा घर क्लब बन गया है। लोग आते मुझे देखने के लिये, पर चर्चा छिड़ती थी कि पंडित बनारसीदास ने इस बार किसको पछाड़ा, प्रसादजी का अमुक नाटक स्टेज की दृष्टि से कैसा है, हिंदी के दैनिक पत्रों में बड़ी अशुद्धियाँ रहती हैं, अब देश में अनार-किस्ट नहीं रह गए हैं, लार्ड बिर्किंगडन अब ब्रूकबांड चाय नहीं पीते, छतारी के नवाब टेढ़ी टोपी क्यों लगाते हैं और राय कृष्णदास हफ्ते में नौ बार दाढ़ी क्यों बनवाते हैं; अर्थात् लार्ड बिर्किंगडन और महात्मा गांधी से लेकर रामजियावन-लाल पटवारी तक की आलोचना यहाँ बैठकर लोग करते थे। और यहाँ दर्द की वह दर्दनाक हालत थी कि क्या लिखूँ। मुझे भी कुछ बोलना ही पड़ता था। ऊपर से पान और सिग-

रेट की चपत अलग, भला दर्द में क्या कमी हो। बीच-बीच में लोग दवा की सलाह और डाक्टर बदलने की सलाह और कौन डाक्टर किस तरह का है, यह भी बतलाते जाते थे।

आखिर में लोगों ने कहा कि तुम कब तक इस तरह पड़े रहोगे। किसी दूसरे की दवा करो। लोगों की सलाह से डाक्टर चूहानाथ कतरजी को बुलाने की सबकी सलाह हुई। आप लोग डाक्टर साहब का नाम सुनकर हँसेंगे। पर यह मेरा दोष नहीं है। डाक्टर साहब के माँ-बाप का दोष है। यदि मुझे उनका नाम रखना होता तो अवश्य ही कोई साहित्यिक नाम रखता। परंतु ये यथानाम तथा गुण। आपकी फीस आठ रुपए थी और मोटर का एक रुपया अलग। आप लंदन के एफ० आर० सी० एस० थे।

कुछ लोगों का सौंदर्य रात में बढ़ जाता है, डाक्टरों की फीस रात में बढ़ जाती है। खैर, डाक्टर साहब बुलाए गए। आते ही हमारे हाल पर रहम किया और बोले, मिनटों में दर्द गायब हुआ जाता है, थोड़ा पानी गरम कराइए, तब तक यह दवा मँगवाइए। एक पुर्जे पर आपने दवा लिखी। पानी गर्म हुआ। दो रुपए की दवा आई। डाक्टर बाबू ने तुरंत एक छोटी-सी पिचकारी निकाली; उसमें एक लंबी सूई लगाई, पिचकारी में दवा भरी और मेरे पेट में वह सूई कोंच-कर दवा डाली।

यह कह देना आसान है कि मेरा कलेजा निगाहों के नेजे के घुस जाने से रेजा-रेजा हो गया है, अथवा उनका दिल बरुनी की बरछियों के हमले से टुकड़े-टुकड़े हो गया है, पर अगर सचमुच एक आलपीन भी धँस जाय तो बड़े-बड़े प्रेमियों को नानी याद आ जाय, प्रेमिकाएँ भूल जायँ। डाक्टर साहब कुछ कहकर और मुझे सांत्वना देकर चले गए। इसके बाद मुझे नींद आ गई और मैं सो गया। मेरी नींद कब खुली कह नहीं सकता, पर दर्द मैं कमी हो चली थी और दूसरे दिन प्रातःकाल पीड़ा रफूचक्कर हो गई थी।

कोई दो सप्ताह मुझे पूरा स्वस्थ होने में लगे। बराबर डाक्टर चूहानाथ कतरजी की दवा पीता रहा। अठारह आने की शीशी प्रतिदिन आती रही। दवा के स्वाद का क्या कहना। शायद मुर्दे के मुख में डाल दी जाय तो वह भी तिलमिला उठे। पंद्रह दिन के बाद मैं डाक्टर साहब के घर गया। उन्हें धन्यवाद दिया। मैंने पूछा कि अब तो दवा पीने की कोई आवश्यकता न होगी। वह बोले—यह तो आपकी इच्छा पर है। पर यदि आप काफी एहतियात न करेंगे तो आपको 'अपेंडिसाइटीज' हो जायगा। यह दर्द मामूली नहीं था। असल में आपको 'सीलियो सेंट्रिक कोलाइटीज' हो गया था। और उससे 'डेवेलप' कर 'पेरिकार्डियल हाइड्रोथ्यू-लिक स्टमकालिस' हो जाता, फिर ब्रह्मा भी कुछ न कर

सकते। मालूम होता है कि आपकी श्रीमती बड़ी भाग्यवती हैं।। अगर छः घंटे की देर और हो जाती तो उन्हें जिंदगी भर रोना पड़ता। वह तो कहिए कि आपने मुझे बुला लिया। अभी कुछ दिनों आप दवा कीजिए।

डाक्टर महोदय ने ऐसे-ऐसे मर्जों के नाम सुनाए कि मेरी तबीयत फड़क उठी। भला मुझे ऐसे मर्ज हुए जिनका नाम साधारण क्या बड़े पढ़े-लिखे लोग भी नहीं जानते। मालूम नहीं, ये मर्ज सब डाक्टरों को मालूम हैं कि केवल हमारे डाक्टर चूहानाथ को ही मालूम हैं। खैर, दवा जारी रक्खी।

अभी एक सप्ताह भी पूरा न हुआ था कि दो बजे दिन को एकाएक फिर दर्द रूपी फौज ने मेरे शरीररूपी किले पर हमला कर दिया। डाक्टर साहब ने जिन-जिन भयंकर मर्जों का नाम लिया था उनका स्वरूप मेरी तड़पती हुई आँखों के सामने नृत्य करने लगा। मैं सोचने लगा कि हुआ हमला किसी उन्हीं में से एक मर्ज का। तुरंत डाक्टर साहब के यहाँ आदमी दौड़ाया गया कि इंजेक्शन का सामान लेकर चलिए। वहाँ से आदमी बिना माँगी पत्रिका की भाँति लौटकर आया कि डाक्टर साहब कहीं गए हैं। इधर मेरी हालत क्या थी उसका वर्णन यदि सरस्वती शार्टहैंड से भी लिखें तो संभवतः समाप्त न हो। एथरोप्लेन के पंखे की तेजी के समान करवटें बदल रहा था। इधर मित्रों और घरवालों की कान्फ्र-

रेंस हो रही थी कि अब कौन बुलाया जाय, पर 'डिसार्गामेंट कान्फरेंस' की भाँति कोई न किसी की बात मानता था, न कोई निश्चय ही हो पाता था। मालूम नहीं, लोगों में क्या-बहस हुई, कौन-कौन प्रस्ताव फेल हुए, कौन-कौन पास। जहाँ मैं पड़ा कराह रहा था उसी के बगल में लोग बहस कर रहे थे। कभी-कभी किसी-किसी की चिल्लाहट सुनाई दे जाती थी। बीमार मैं था, अच्छा-बुरा होना मुझे था, फीस मुझे देनी थी, परंतु लड़ और लोग रहे थे। मालूम होता था कि उन्हीं लोगों में से किसी की जमींदारी कोई जबर्दस्ती छीने लिए जा रहा है। अंत में हमारे मकान के बगल में रहनेवाले पंडितजी की विजय हुई और आयुर्वेदाचार्य, रसज्ञ-रंजन, चिकित्सा-मार्तंड, प्रमेह-गज-पंचानन, कविराज पंडित खुखड़ी शास्त्री के बुलाने की बात तय हुई। आधा घंटा तो बहस में बीता। खैर, किसी तरह से कुछ तय हुआ। एक सज्जन उन्हें बुलाने के लिये भेजे गए। कोई पैंतालीस मिनट बीत गए, परंतु वहाँ से न वैद्यजी आए, न भेजे गए सज्जन का ही पता चला। एक ओर दर्द इनकम टैक्स की तरह बढ़ता ही चला जा रहा था, दूसरी ओर इन लोगों का भी पता नहीं। और भी बेचैनी बढ़ी। अंत में जो साहब गए थे, लौटे। वे बोले, वैद्यजी ने बड़े गौर से पत्रा देखा और कहा कि अभी बुद्ध के क्रांति-वृत्त में शनि की स्थिति है, एकतीस

पल नव विपल में शनि बाहर हो जायगा और डेढ़ घटी एकादशी का योग है उसके समाप्त होने पर मैं चलूँगा। आप आध घंटे में आइएगा। सुनकर मेरा कलेजा कबाब हो गया। मगर वह कह आए थे, अतएव बुलाना भी आवश्यक था। मैंने फिर उन्हें भेजा। कोई आध घंटे बाद वैद्यजी एक पालकी पर तशरीफ लाए। आकर आप मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गए। आप धोती पहने हुए थे और कंधे पर एक सफेद दुपट्टा डाले हुए थे। इसके अतिरिक्त शरीर पर सूत के नाम पर केवल जनेऊ था, जिसका रंग देखकर यह शंका होती थी कि कविराजजी कुश्ती लड़कर आ रहे हैं। वैद्यजी ने कुछ और न पूछा—पहले नाड़ी हाथ में ली। पाँच मिनट तक एक हाथ की नाड़ी देखी, फिर दूसरे हाथ की। बोले, 'वायु का प्रकोप है, यकृत से वायु घूमकर पित्ताशय में प्रवेश कर अंत्र में जा पहुँची है। इससे मंदाग्नि का प्रादुर्भाव होता है और इसी कारण जब भोज्य पदार्थ प्रतिहत होता है तब शूल का कारण होता है। संभव है, मूत्राशय में अश्मन भी एकत्र हो'। कविराजजी मालूम नहीं क्या बक रहे थे और मेरी तबीयत दर्द और क्रोध से एक दूसरे ही संसार में हो रही थी। आखिर मुझसे न रहा गया। मैंने एक सज्जन से कहा—जरा आलमारी में से आपटे का कोष तो लेते आइए। यह सुनकर लोग चकराए। कुछ लोगों को संदेह हुआ कि अब

मैं अपने होश में नहीं हूँ। मैंने कहा—दवा तो पीछे होगी, मैं पहले समझ तो लूँ कि मुझे रोग क्या है? पंडितजी कहने लगे—बाबू साहब, देखिए आज-कल के नवीन डाक्टरों को रोगों का निदान तो ठीक मालूम ही नहीं, चिकित्सा क्या करेंगे। अँगरेजी पढ़े-लिखों को वैद्यक-शास्त्र पर से विश्वास उठ गया है। परंतु हमारे यहाँ ऐसी-ऐसी औषधियाँ हैं कि एक बार मृत्युलोक से भी लौटा लें। मुहूर्त मिल जाना चाहिए। और अच्छा वैद्य मिल जाना चाहिए। इसके पश्चात् वैद्यजी चरक, सुश्रुत, रसनिघंटु, भेषजदीपिका, चिकित्सा-मार्तंड के श्लोक सुनाने लगे। और अंत में कहा—देखिए, मैं दवा देता हूँ और अभी आपको लाभ होगा। परंतु इसके पश्चात् आपको पर्पटी का सेवन करना होगा। क्योंकि आपका शुक्र मंद पड़ गया है। गोमूत्र में आप पर्पटी का सेवन कीजिए, फिर देखिए दर्द पारद के समान उड़ जायगा और गंधक के समान भस्म हो जायगा। लिखा है—

गोमूत्रेण समायुक्ता रसपर्पटिकाशिता।
मासमात्रप्रयोगेण शूलं सर्वं विनाशयेत्॥

मैंने कहा—शुक्र अस्त नहीं हो गया, यही क्या कम है। पंडितजी गोमूत्र पिलाइए और गोबर भी खिलाइए। शायद आप लोगों के शास्त्र में और कोई भोजन रह ही नहीं गया है। इसी कारण से आप लोगों के दिमाग की बनावट भी

विचित्र है। खैर, पंडितजी ने दवा दी। कहा कि अदरख के रस में इस औषधि का सेवन करना होगा। खैर साहब फीस दी गई किसी प्रकार वैद्यजी से पिंड छूटा। दो दिन दवा की गई। कभी-कभी तो कम अवश्य हो जाता था, पर पूरा दर्द न गया। सी० आई० डी० के समान पीछा छोड़ता ही न था। वैद्यजी के यहाँ जब आदमी जाता तब कभी रविवार के कारण, कभी प्रदोष के कारण और शायद त्रिदोष के कारण ठीक समय से दवा ही नहीं देते थे।

अब वैसी बेचैनी नहीं रह गई थी, पर बलहीन होता गया। खाना-पीना भी ठीक मिलता ही न था। चारपाई पर पड़ा रहने लगा। दिन को मित्रों की मंडली आती थी। वह आराम देती थी कम, दिमाग चाटती थी अधिक। कभी-कभी दूर-दूर से रिश्तेदार भी आते थे। और सब लोग डाक्टरों को गाली देकर और मुझे बिना माँगी सलाह देकर चले जाते थे। मैं चारपाई पर 'इंटर्न' था। आखिर मेरा विचार हुआ कि फिर डाक्टर साहब की याद की जाय। जिस समय मैं यह जिक्र कर रहा था, एक 'कांग्रेसमैन' बैठे हुए थे। यह सज्जन अभी जेल से लौटे थे। मुझे देखने के लिये तशरीफ लाए थे। बोले, "साहब, आप लोगों को देश का हर समय ध्यान रखना चाहिए। ये डाक्टर सिवा विलायती दवाओं के ठीकेदार के और कुछ नहीं होते। इनके कारण ही विलायती

दवाएँ आती हैं। आप किसी भारतीय हकीम अथवा वैद्य को दिखलाइए।" ऐसी खोपड़ीवालों से मैं क्या बहस करता? मैंने मन में सोचा कि वैद्य महाराज को तो मैंने देख ही लिया। कुछ और रुपयों पर ग्रह आया होगा, हकीम भी सही। एक की सलाह से मसीहुल हिंद, बुकराते जमाँ, मुकरातुश्शफा जनाब हकीम सैयद आलुए बुखारा साहब के यहाँ आदमी भेजा। आप फौरन तशरीफ लाए। इस जमाने में भी जब तेज से तेज सवारियों का प्रबंध सभी जगह मौजूद है, आप पालकी में चलते हैं। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि पालकी रख दी जाती है अथवा कहार कंधे पर ले लेता है और हकीम साहब उसमें टहला करते हैं। मेरा मतलब यह है कि जब किसी के यहाँ आप बुलाए जाते हैं तब पालकी के भीतर बैठकर आप जाते हैं।

हकीम साहब आए। यद्यपि मैं अपनी बीमारी का जिक्र और अपनी बे-बसी का हाल लिखना चाहता हूँ, पर हकीम साहब की पोशाक और उनके रहन-सहन तथा फैशन का जिक्र न करना मुझसे न हो सकेगा। सर्दी बहुत तेज नहीं थी। बनारस में यों भी तेज सर्दी नहीं पड़ती। फिर भी ऊनी कपड़ा पहनने का समय आ गया था। परंतु हकीम साहब चिकन का बंदवार अंगा पहने हुए थे। सिर पर बनारसी लोटे की तरह टोपी रक्खी हुई थी। पाँव में पाजामा

ऐसा मालूम होता था कि चूड़ीदार पाजामा बननेवाला था, परंतु दर्जी ईमानदार था। उसने कपड़ा चुराया नहीं, सबका सब लगा दिया; अथवा यह भी हो सकता है कि ढीली-मोहरी के लिये कपड़ा दिया गया हो और दर्जी ने कुछ कतर-ब्योंत की हो और चुस्ती दिखाई हो। जूता कामदार दिल्लीवाला था, मोजा नहीं था। रूमाल इतना बड़ा था कि अगर उसमें कसीदा कढ़ा न होता तो मैं समझता कि यह रूमाल मुँह अथवा हाथ पोंछने के लिये नहीं तरकारी बाँधने के लिये है। हकीम साहब के दाढ़ी के बाल ठुड्डी की नोक ही पर इकट्ठे हो गए थे। मालूम होता था हजामत बनाने का बुरुश है। हकीम साहब पतले-दुबले इतने थे कि मालूम पड़ता था, अपनी तंदुरुस्ती आपने अपने मरीजों को बाँट दी है। हकीम साहब में नजाकत भी बला की थी। रहते थे बनारस में, मगर कान काटते थे लखनऊ के।

आते ही मैंने सलाम किया, जिसका उत्तर उन्होंने मुस्कराते हुए बड़े अंदाज से दिया और बोले—मिजाज कैसा है?

मैंने कहा—"मर रहा हूँ। बस, आपका ही इंतिजार था। अब यह जिंदगी आपके ही हाथों में है।"

हकीम साहब ने कहा—या रब! आप तो ऐसी बातें करते हैं गोया जिंदगी से बेजार हो गए हैं। भला ऐसी गफ्लत भी कोई करता है। मरें आपके दश्मन। नब्ज तो

दिखलाइए। खुदावंदकरीम ने चाहा तो आननफानन में दर्द रफूचक्कर होगा।

मैंने कहा—अब आपकी दुआ है। आपका नाम बनारस में ही नहीं, हिंदुस्तान में लुकमान की तरह मशहूर है, इसीलिए आपको तकलीफ दी गई है।

दस मिनट तक हकीम साहब ने नब्ज देखी। फिर बोले, मैं यह नुसखा लिखे देता हूँ। इसे इस वक्त आप पीजिए, इंशा अल्लाह जरूर शफा होगी। मैंने बगौर देख लिया। लेकिन आपका मेदा साफ नहीं है। और सारे फसाद की बुनियाद यही है।

मैंने कहा—तो बुनियाद उखाड़ डालिए। किस दिन के लिये छोड़ रहे हैं।

हकीम आलू बुखारा साहब बोले—तो आप मुसहिल* ले लीजिए। पाँच रोज तक मुंजिज पीना होगा इसके बाद मुसहिल। इसके बाद मैं एक माजून लिख दूँगा। उसमें जोफ़ दिल, जोफ दिमाग, जोफ जिगर, जोफ मेदा, जोफ चश्म, हरएक की रियायत रहेगी। मुझसे न रहा गया। मैं बोला, कई जोफ आप छोड़ गए, इसे कौन अच्छा करेगा। हकीम साहब ने, कहा, जब तक मैं हूँ, आप कोई फिक्र न कीजिए।

*मुसहिल—१जोफ—कमजोरी।

एक सज्जन ने उनके हाथों में फीस रक्खी। हकीम साहब चलने को तैयार हुए। उठे। उठते उठते बोले, जरा एक बात का ख्याल रखिएगा कि आज-कल दवाइयाँ लोग बहुत पुरानी रखते हैं। मेरे यहाँ ताजी दवाइयाँ रहती हैं।

मैंने उनकी दवा उस दिन पी। वह कटोरा भर दवा जिसकी महक रामघाट के सिवर से कंपिटीशन के लिये तैयार थी, किसी प्रकार गले के नीचे उतार गया, जैसे अहल्कार लोग अँगरेजों की डाँट निगल जाते हैं। दूसरे दिन मुंजिज आरंभ हुआ। उसका पीना और भी एक आफत थी। मालूम पड़ता था, भरतपुर के किले पर मोरचा लेना है। मेरी इच्छा हुई कि उठाकर गिलास फेंक दूँ, पर घरवाले जेल के पहरुओं की भाँति सिर पर सवार रहते थे। चौथे दिन मुसहिल की बारी आई। एक बड़े से मिट्टी के बधने से दवा मुझे पीने को दी गई। शायद दो सेर के लगभग रही होगी। एक घूँट गले के नीचे उतरा होगा कि जान बूझकर मैंने करवा गिरा दिया। बधना गिरते ही असफल प्रेमी के हृदय की भाँति चूर-चूर हो गया और दवा होली के रंग के समान सबकी धोतियों पर जा पड़ी। उस दिन के बाद से हकीम साहब की दवा मुझे पिलाने का फिर किसी को साहस न हुआ। खेद इतना ही रह गया कि उसी के साथ हकीम साहबवाला माजून भी जाता रहा।

दर्द फिर कम हो चला। परंतु दुर्बलता बढ़ती जाती थी। कभी-कभी दर्द का दौरा अधिक वेग से हो आता था। अब लोगों को विशेष चिंता मेरे संबंध में नहीं रहती थी। कहने का मतलब यह है कि लोग देखने सुनने कम आते थे। यही घनिष्ठ मित्र आते थे। घरवालों को और मुझे भी दर्द के संबंध में विशेष चिंता होने लगी। कोई कहता था कि लखनऊ जाओ, कोई एक्स-रे का नाम लेता था। किसी-किसी ने राय दी कि जल-चिकित्सा कीजिए। एक सज्जन ने कहा, यह सब कुछ नहीं, आप होमियोपैथी इलाज शुरू कीजिए, देखिए कितनी शीघ्रता से लाभ होता है। बोले—साहब इन नन्हीं नन्हीं गोलियों में मालूम नहीं कहाँ का जादू है। साहब जादू का काम करती है, जादू का।

एक नेचर-क्योरवाले ने कहा कि आप गीली मिट्टी पेट पर लेपकर धूप में बैठिए, एक हफ्ते में दर्द हवा हो जायगा। हमारे ससुर साहब एक डाक्टर को लेकर आए। उन्होंने कहा, देखिए साहब! आप पढ़े-लिखे आदमी हैं। समझदार हैं—मैं बीच में बोल उठा, समझदार न होता तो भला आप को कैसे यहाँ बुलाता।

डाक्टर महोदय ने कहा—दवा तो नेचर की सहायता करने के लिये होती है। आप कुछ दिनों तक अपना 'डायट' बदल दीजिए। मैंने इसी डायट' पर कितने ही रोगियों को

अच्छा किया है। मगर हम लोगों की सुनता कौन है। असल में आपमें विटेमिन 'एफ' की कमी है। आप नीबू, नारंगी, टमाटो, प्याज, धनिया के रस में सलाद भिगोकर खाया कीजिए। हरी-हरी पत्तियाँ खाया कीजिए।

मैंने पूछा—पत्तियाँ खाने के लिये पेड़ पर चढ़ना होगा। अगर इसके बजाय घास बतला दें तो अच्छा हो। जमीन पर ही मिल जायगी।

इसी प्रकार जो आता इतनी हमदर्दी दिखलाता था कि एक डाक्टर, हकीम या वैद्य अपने साथ लेता आता था।

खाने के लिये साबूदाना ही मेरे लिए अब न्यामत थी। ठंडा पानी मिल जाता था, यह परमात्मा की दया थी। तीन बजे एक पंडितजी महाराज आकर एक पोथी में से बड़-बड़ पाठ किया करते थे और मेरा मग्ज खाते थे। शाम को एक पंडित और आकर मेरे हाथ में कुछ धूल रख जाते कि महामृत्युंजय का प्रसाद है। इसी बीच में मेरी नानी की मौसी मुझे देखने आईं। उन्होंने बड़े प्रेम से देखा। देखकर बोलीं, मैं तो पहले ही सोच रही थी कि यह कुछ ऊपरी खेल है। मैंने पूछा, यह ऊपरी खेल क्या है नानोजी। बोलीं—बेटा, सब कुछ किताब में ही थोड़े लिखा रहता है। बात यह है किसी चुड़ैल का फसाद है। मेरी स्त्री और माता की ओर दिखाकर कहने लगीं, देखो न इसकी बरौनी कैसी

खड़ी है। कोई चुड़ैल लगी है। किसी को दिखा देना चाहिए। मैंने कहा, डाक्टर तो मेरी जान के पीछे लग गए हैं! क्या चुड़ैल उनसे भी बढ़कर होगी। जब सब लोग चले गए तब मेरी स्त्री ने कहा, तुम लोगों की बात क्यों नहीं मान लिया करते? कुछ हो या न हो, इसमें तुम्हारा हर्ज ही क्या है। कुछ खाने की दवा तो देंगे नहीं। परमात्मा की आज्ञा तो टाली जा सकती है, परंतु अपनी या मैं तो कहूँगी किसी भले आदमी की स्त्री की आज्ञा कोई भला आदमी नहीं टाल सकता। मैंने कहा तुम लोगों को जो कुछ करना है करो, मगर मेरे पास किसी को मत बुलाना। कोई ओझा या भूत का पचड़ा मेरे पास लेकर आया तो वही सन् २ में मुजफ्फरपुर संमेलन में जो चप्पल पहनकर गया था उसी से मैं उठकर मरम्मत करने लगूँगा। श्रीमतीजी बोलीं, अजी वह कोई ओझा थोड़े ही हैं। एम० ए० पास हैं। कुछ समझा होगा तभी तो यह काम करते हैं। कितनी स्त्रियाँ रोज उनके पास जाती हैं, कितने पुरुष जाते हैं। बड़े वैज्ञानिक ढंग से उन्होंने इसका अन्वेषण किया है।

मेरे दर्द में किसी विशेष प्रकार की कमी न हुई। ओझा से तो किसी प्रकार की आशा क्या करता। पर बीच-बीच में दवा भी होती जाती थी। अंत में मेरे साले साहब ने बड़ा जोर दिया कि यह सब झंझट इसीलिए है कि तुम ठीक

दवा नहीं करते। होमियोपैथी चिकित्सा शुरू करो, सारी शिकायत गंजों के बाल की तरह गायब हो जायगी। मैंने भी कहा 'मुर्दे पर जैसे बीस मन वैसे पचास'। ऐसा न हो कि कोई कह दे कि अमुक 'सिस्टम' का इलाज छूट गया। अब यह राय होने लगी कि किस होमियोपैथ को बुलाया जाय। हमारे मकान से कुछ दूर एक होमियोपैथ डाकिया था। दिन भर चिट्ठी बाँटता था, सवेरे और शाम दो पैसे पुड़िया दवा बाँटता था। सैकड़ों मरीज उसके यहाँ जाते। बड़ी प्रैक्टिस थी। एक और होमियोपैथ थे। चार पैसे फर्मा दिन में पुस्तकों का अनुवाद करते थे और प्रातः-सायं होमियोपैथी से चार-छः आने पैदा कर लेते थे। एक मास्टर भी थे जो कहा करते थे कि सच पूछो तो जैसी होमियोपैथी मैंने 'स्टडी' की है, किसी ने नहीं की। कुछ बहस के बाद एक डाक्टर का बुलाना निश्चित हुआ। डाक्टर महोदय आए। आप भी बंगाली थे। आते ही सिर से पाँव तक मुझे तीन-चार बार ऐसे देखा मानो मैं हानोलूलू से पकड़कर लाया गया हूँ और खाट पर लिटा दिया गया हूँ। इसके पश्चात् मेडिकल सनातन-धर्म के अनुसार मेरी जीभ देखी। फिर पूछा, दर्द ऊपर से उठता है कि नीचे से, बाएँ से कि दाएँ से; नोचता है कि कोंचता है; चिकोटता है कि बकोटता है; मरोड़ता है कि खरोंचता है। मैंने कहा कि मैंने तो दर्द की फिल्म तो उतरवाई

नहीं है। जो कुछ मालूम होता है, मैंने आपसे कह दिया। डाक्टर महोदय बोले—बिना सिमटाम के देखे कैसे दवा देने सकता है। एक एक दवा का सेरियस सिमटाम होता है। फिर मालूम नहीं कितने सवाल मुझसे पूछे। इतने सवाल तो आई० सी० एस० के 'वाइवाबोसी' में भी नहीं पूछे जाते। पर कुछ प्रश्न यहाँ अवश्य बतला देना चाहता हूँ। मुझसे पूछा—तुम्हारे बाप के चेहरे का रंग कैसा था। कै बरस से तुमने सपना नहीं देखा। जब चलते हो तब नाक हिलती है या नहीं। किसी स्त्री के सामने खड़े होते हो तब दिल धड़कता है कि नहीं? जब सोते हो तब दोनों आँखें बंद रहती हैं कि एक। सिर हिलाते हो तो खोपड़ी में खट-खट आवाज आती है कि नहीं। मैंने कहा—आप एक शार्ट हैंड राइटर भी साथ लेकर चलते हैं कि नहीं। इतने प्रश्नों का उत्तर देना मेरे लिए असंभव है।

फिर डाक्टर बाबू ने पचीसों पुस्तकों का नाम लिया और बोले—फेरिंगटन यह कहते हैं, नैश यह कहते हैं, क्लार्क के हिसाब से यह दवा होगी। डाक्टर साहब पंद्रह-बीस पुस्तकें भी लाए थे। आध घंटे तक उन्हें देखते रहे। तब दवा दी। आपकी दवा से कुछ लाभ अवश्य हुआ, पर पूरा फायदा न हुआ। मैंने अब पक्का इरादा कर लिया कि लखनऊ जाऊँ। जो बात काशी में नहीं हो सकती, लखनऊ

में हो सकती है। वहाँ सभी साधन हैं।

सब तैयारी हो चुकी थी कि इतने में एक और डाक्टर को एक मेहरबान लिवा लाए। उन्होंने देखा, कहा—ज़रा मुँह तो देखूँ। मैंने कहा मुँह-जीभ जो चाहे देखिए। देखकर बड़े जोर से हँसे। मैं घबराया। ऐसी हँसी केवल कवि-संमेलन में बेढंगी कविता पढ़ने के समय सुनाई देती है। मैं चकित भी हुआ। डाक्टर बोले, किसी डाक्टर को यह सूझी नहीं। तुम्हें 'पाइरिया' है। उसी का जहर पेट में जा रहा है और सब फसाद पैदा कर रहा है। मैंने कहा—तब क्या करूँ? डाक्टर साहब ने कहा—इसमें करना क्या है? किसी डेंटिस्ट के यहाँ जाकर सब दाँत निकलवा दीजिए। मैंने अपने मन में कहा—आपको तो यह कहने में कुछ कठिनाई ही नहीं हुई। गोया दाँत निकलवाने में कोई तकलीफ ही नहीं होती। खैर, रात भर मैंने सोचा। मैंने भी यही निश्चय किया कि यही डाक्टर ठीक कहता है। डेंटिस्ट के यहाँ से पुछवाया। उसने कहलाया कि तीन रुपए फी दाँत तुड़वाने में लगेंगे। कुल दाँतों के लिये छानवे रुपए लगेंगे। मगर मैं आपके लिये छः रुपए छोड़ दूँगा। इसके अतिरिक्त दाँत बनवाई डेढ़ सौ अलग। यह सुनकर पेट के दर्द के साथ-साथ सिर में भी चक्कर आने लगा। मगर मैंने सोचा कि जान सलामत है तो सब कुछ। इतना और खर्च करो।

श्रीमती से मैंने रुपए माँगे। उन्होंने पूछा—क्या होगा ? मैंने सारा हाल कह दिया। वे बोलीं -- तुम्हारी बुद्धि कहीं घास चरने गई है क्या ? किसी कवि का तो साथ नहीं हो गया है कि ऐसी बातें सूझने लगी हैं। आज कोई कहता है दाँत उखड़वा डालो। कल कोई कहेगा सारे बाल उखड़वा डालो; परसों कोई डाक्टर कहेगा नाक नोचवा डालो, आँख निकलवा दो। यह सब फजूल है। तुम सुबह टहला करो, किसी एक भले डाक्टर की दवा करो। खाना ठिकाने से खाओ। पंद्रह दिन में ठीक हो जाओगे। मैंने सबका इलाज भी देख लिया। मैंने कहा तुम्हें अपनी ही दवा करनी थी तो इतने रुपए क्यों बरबाद कराए ?

कुछ दिन के बाद मैंने समझा कि स्त्रियों में भी बुद्धि होती है—विशेषतः बीस साल की आयु के बाद।

कविता का कचूमर

किस्मत का फूटना बम के फूटने से भी भयंकर है। बम फूटने पर तो आप मर जाते हैं; मगर दूसरी दुनिया में जाने के लिये। किस्मत का फूटना तो जीना है, मरने के लिये। मगर, मेरी किस्मत फूटी नहीं, कुचल गई, और दिल पिस गया। मैं कॉलेज में पढ़ता था, या यों कहिए कि पढ़ने के नाम पर कॉलेज जाया करता था। एक साल तो मजे में कटा, यहाँ तक कि साल भर क्या दस महीने में मेरा नाम भी आठ बार कटा; परंतु था मैं कॉलेज का स्टूडेंट। मगर, वैसा ही कि एक किताब और एक कॉपी लेकर जेब में फाउन्टेनपेन खोंसकर कॉलेज जाता था—चार घंटों में एक घंटा तमोली की दूकान पर और एक घंटा कामन रूम में हर दूसरे दिन कटता था। दर्जे में हाजिरी कोई मेहरबान बोल देते थे। कितनी ही घटनाएँ हुईं, जिसे गारजियन लोग शरारत के नाम से पुकारते हैं; मगर कोई ऐसी घटना नहीं हुई, जैसी इस वर्ष और वह भी वर्ष के आरंभ में। आप समझ सकते हैं कि जब बोहनी ही खराब हुई, तब आगे का क्या हाल होगा।

जुलाई का महीना था। नए नए लड़के नाम लिखाने आ रहे थे, जिन्हें देखकर हम लोग हँसते थे और खूब मजाक उड़ाते थे; क्योंकि हम लोग एक साल पुराने चंट हो चुके थे। एक दिन क्या देखता हूँ कि ऑफिस में एक लड़की खड़ी है। खाली इतना ही देखा, उसका चेहरा देखने की नौबत नहीं आई। हम लोगों ने समझा, कोई होगा। मैं जिस जमाने की बात कह रहा हूँ, उसके पहले हमारे कॉलेज में लड़कियाँ पढ़ने नहीं आती थीं। जिस साल का मैं जिक्र कर रहा हूँ, उसी साल से लड़कियाँ आने लगीं, और खूब आईं, जैसे अमेरिका से गेहूँ आता है। ज्यों-ज्यों जुलाई बढ़ती गई, गिनीपिग की संतान की भाँति इनकी संख्या भी बढ़ने लगी। मेरे दर्जे—सेकंड इयर—में भी तीन लड़कियाँ आईं। मैं तो नहीं चाहता; परंतु पाठक अवश्य चाहते होंगे; इसलिए उनका थोड़ा परिचय दे देना आवश्यक है।

इन गर्ल स्टूडेंटों में से दो ने आर्ट विषय ले रखा था और एक ने विज्ञान। मैंने भी विज्ञान ले रखा था। इसलिए इन दोनों के विषय में मैं अधिक नहीं कह सकता। इतना जानता हूँ कि उनमें से एक चश्मा आँखों पर या नाक पर लगाती थी। शरीर इतना दुबला था; मानों भुवाली सैनिटोरियम से अभी निकली हैं। इन्हें देखकर बायोलाजी पढ़नेवालों को स्केलिटन की आवश्यकता नहीं थी। चेहरे का रंग

पीला था, जिसे शिष्टता के कारण लोग गोरा कहते थे। दूसरी का रंग साँवला था, शरीर भी सुडौल था, केवल चेहरे पर मालूम होता था कि अल्लामियाँ ने चाँदमारी खेली है।

मिस मालती खन्ना, जिन्होंने विज्ञान ले रखा था, बड़ी सुंदर थीं। उनके सौंदर्य और स्निग्धता के वर्णन करने का लालच मैं संवरण करता हूँ। कोई भी कलाबाज—मेरा अभिप्राय कलाकार से है—कोई भी कवि, पेंटर, उन्हें सुंदरता का सार्टिफिकेट या डिप्लोमा दे सकता था। यहाँ तक कि एक दिन हमारे कॉलेज के दर्शन के प्रोफेसर ने भी—जिनकी दाढ़ी में दूरबीन लेकर ढूँढ़ने से भी एक काला बाल न निकलेगा—एक व्याख्यान में यूनान के 'पेरिक्लियन एज' का वर्णन करते हुए मस्त होकर कह दिया—'ऐज परफेक्ट ऐज मिस खन्ना! एक तो यों ही सूर्य का प्रकाश, दूसरे मशाल लेकर उसकी ओर उँगली उठाना! मिस मेयो की मदर इंडिया की भाँति मिस खन्ना का नाम सारे कॉलेज में मशहूर हो गया। कितने लोग तो पहले से ही उनके प्रेम-व्यवहार से मुग्ध हो गए थे, बाकी रहे-सहे लोग भी उनकी कचहरी के अनपेड अपरेंटिस होने की चेष्टा करने लगे। कुछ लोग मजाक में, कुछ मनोरंजन में उनके मित्र बन गए। मैं भी उनके प्रेम का 'प्रोवेशनर' बन गया। यों तो मैंने बड़ी-बड़ी शरारतें कॉलेज में की थीं, परंतु किसी लड़की को छेड़ना मेरे स्वभाव के विरुद्ध

था—विशेषतः जब कि वह मिस खन्ना-सी सीधी और सच्चरित्र हो। परंतु, उससे बातें करने को जी चाहता अवश्य था। दर्जे में मेरा और उसका साथ बराबर होता; परंतु मुझे बोलने में बड़ी झिझक होती थी।

मगर मैंने हिम्मत की। पहले तो डर मालूम हुआ; पर धीरे-धीरे बात शुरू ही कर दी। एक दिन मैंने कहा—बोटेनी का नोट मेरा पूरा नहीं है, आप बहुत रेगुलर हैं, यदि शनिवार को दे दें, तो रविवार को पूरा करके दे दूँगा। मैं और भी रेगुलर छात्रों से माँग सकता था; परंतु एक बहाना था। शनिवार को नोट मुझे मिल गया। सोमवार को मैं उसे लाना भूल गया। याद नहीं है कि जान-बूझकर, या सचमुच। मैंने क्षमा माँगते हुए कहा—कहिए तो घर पर दे जाऊँ। उन्होंने कहा—कोई ऐसी जल्दी नहीं है। कहने का मतलब यह कि जान-पहचान बढ़ गई। मिस खन्ना के पिता से भी भेंट हो गई और वह मुझे बहुत ही अच्छा लड़का समझकर अपने यहाँ आने देते थे। मैं जो था, वह तो मैं ही जानता हूँ।

जब रोमान्स शुरू होता है, तब कविता करने की बहुत सूझती है। हृदय चुलबुलाया करता है और आए चाहे न आए, शेली और कीट्स का भूत सिर पर चढ़ जाता है। मैं भी अपने हृदय की वीणा का तार तोड़ने लगा। नीरव रुदन और हृदय का झंझावात, दीर्घ निःश्वास के भँवर में डूब-

कियाँ लेने लगा। एकाध महीने की कलम-घसीटी के बाद कुछ अच्छा भाव भी निकलने लगा। दो-चार पंक्तियाँ मैंने मिस खन्ना को भी दिखाईं। उन्होंने पसंद कीं। फिर क्या था, मेरे रोम-रोम से सरस्वती-सरिता फूट निकली! मैं शीघ्र ही अपने को बीसवीं सदी का 'बायरन' समझने लगा।

मिस खन्ना ने कहा—छपने के लिये क्यों नहीं अपनी रचनाएँ भेजते। मैं लगा डींग मारने—कविता तो स्वांतः सुखाय होती है। हृदय के स्पंदन का शब्दों में चित्र होता है, वह छपे या न छपे। जो लोग केवल छपाने के लिये कविता लिखते हैं, उनका उद्देश्य वही होगा।

परंतु असल बात यह है कि मैंने कई पत्रों में अपनी 'रचना' भेजी; परंतु किसी ने न छापी। पत्रों में कितने पैसे खर्च हो गए। संपादक लोग पत्रों का उत्तर तक नहीं देते थे। एक संपादक को मैंने जब लिखा कि क्या आपकी विख्यात विविध विषय विभूषित पत्रिका में कभी मेरी कविता न प्रकाशित होगी? उन्होंने उत्तर में लिखा—घबड़ाइए मत, मैं हमेशा जिंदा नहीं रहूँगा।

मिस खन्ना ने कहा—नहीं, मोती को समुद्र के बाहर आना ही चाहिए, आप अवश्य अपनी रचनाएँ छपाइए।

मैंने 'बहुत अच्छा' कह दिया और कहा कि किसी उपनाम से प्रकाशित कराऊँगा।

उन्होंने कहा—नहीं, उपनाम तो एक फजूल चीज है! अपने असली नाम से छपाइए। उपनाम की अनुपयोगिता पर उन्होंने पंडित रामनरेश त्रिपाठी के पहले ही विचार कर लिया था। एक तरुणी का कहना और एक तरुण व्यक्ति टाल दे, इससे बढ़कर बेरहमी और क्या हो सकती है! मैंने नाम भी देना स्वीकार कर लिया।

मैंने बड़े परिश्रम से एक कविता लिखी। कविता के हृदय में मिस खन्ना का हृदय था। उनका नाम नहीं था; परंतु वह भी, और जो लोग हम लोगों को जानते थे वह भी पढ़कर समझ जाते। कविता अगर सुमित्रानंदन पंत के मुकाबले की न थी, तो शांतिप्रिय द्विवेदी से तो टक्कर ले ही सकती थी। कागज पर दिल, फेफड़ा, जिगर, तिल्ली सब निकालकर रख दिया था। साप्ताहिक 'हृदय' ने उसका प्रकाशन भी स्वीकार कर लिया। मासिक-पत्रिकाओं में छपने में देर होती और छपने-न-छपने में भी संदेह था। मैं चाहता था कि शीघ्रातिशीघ्र कविता छप जाय और वह लेकर मैं उन्हें समर्पित करूँ। मेरे प्रेम का भी पूर्ण प्रदर्शन हो जायगा। मैं अब फूलकर गोलगप्पा हो रहा था; परंतु वाह रे तकदीर! शनिवार की शाम को पत्र प्रकाशित होता था और शुक्रवार को घर से तार आया—'कम ऐट वन्स' मैटर अरजेंट' अब मैं दोहरे चक्कर में पड़ा। इधर यह अवसर जा रहा था, मिस

खन्ना को कविता दिखाने का और प्रेम जाहिर करने का, उधर घरवालों ने भी साफ न लिखा। कोई मर रहा है या क्या घटना घटित हुई। बहुत सोच-विचारकर जाना ही उचित समझा। अब कविता कैसे दूँगा? मालूम नहीं घर पर क्या बात है, कब तक लौटूँ। इन विचारों ने मेरे दिमाग को चरखी बना दिया।

बहुत सोच-विचारकर मैंने यही तै किया कि एक पत्र के साथ उनको 'हृदय' की एक प्रति डाक से भेज दूँ। सोचते ही चौक गया। अनेक दूकानों पर सेंट की शीशियाँ देखीं, आखिर बकुल की एक शीशी लाया। तुरंत ही एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार था—

'डियर मिस मालती!

मैं नहीं जानता कि आपको क्या लिखूँ। जो कविता इस सूखे पत्र के साथ जा रही है, वह आपके ही 'इंसपिरेशन' का फल है। डरते-डरते हृदय को खोला है। अब आपकी दया है और मेरा गरीब हृदय है। कविता 'हृदय' में प्रकाशित हो गई है। कविता पढ़कर मुझे आप कोई मौसिमी प्रेमी मत समझिएगा। मेरा प्रेम 'हंस'-सा उज्ज्वल 'सरस्वती'-सा पवित्र, 'भारत'-सा दीन 'सुधा'-सा सरस, 'वीणा'-सा मधुर और 'विश्वमित्र' के हृदय के समान 'विशाल' है। मैं स्वयं इसे लेकर आपके मक्खन-समान चरणों

में अर्पित करता; परंतु साथ के तार से आपको मालूम हो जायगा कि विधना ने कुछ और ही लिख रखा है। अस्तु, घर से लौटने तक.....

आपके करुणा-कटाक्ष का

भिखारी'

मैंने पत्र जरा साहित्यिक ढंग से लिखा, जिससे और भी प्रभाव पड़े। पत्र पर आधी शीशी सेंट उलट दिया। फिर उसे मोड़कर एक सुंदर लाल रेशमी रिबन से बाँधा और एक लिफाफे में रखकर बंद कर दिया। ऊपर मिस मालती खन्ना लिख दिया। फिर एक बड़ा लिफाफा लेकर उसपर पता लिखकर टिकट लगाकर 'हृदय' के दफ्तर में पहुँचा। पूछने पर पता लगा कि कविता रात में कंपोज होगी। काम की अधिकता से अभी नहीं कंपोज हो सकी। मैंने बड़े लिफाफे में छोटा लिफाफा रख दिया और संपादक महोदय को दे दिया कि पत्र छप जाने पर उसकी एक प्रति इसी लिफाफे में रखकर डाक में डलवा दीजिएगा। उन्होंने अच्छा कहकर लिफाफा ले लिया, मैं उसी रात को घर चला आया।

घर पहुँचने पर पता चला कि मेरे विवाह के लिए एक सज्जन मेरा दर्शन करने आए हैं। बड़ी झुँझलाहट हुई—यही तार में क्यों न लिख दिया। मैं दो दिन बाद आता। क्या घर पर मेरी तस्वीर न थी? जी में आया कि जो

सज्जन आए हैं, उनका गला घोंट दूँ। किसी प्रकार शनिवार का दिन कटा, रविवार को भी जबर्दस्ती लोगों ने रोक लिया। सोमवार को मैं घर से लौटा। राह में ऐसी ऊँची-ऊँची और सुंदर कल्पनाओं के महल खड़े कर रहा था कि यदि ताजमहल, विक्टोरिया मेमोरियल और दिल्ली का वायसराय-भवन एक के ऊपर एक खड़े कर दिए जाते, तब भी फीके और छोटे लगते। मैं इस प्रकार से मिस खन्ना के यहाँ पहुँचूँगा, वह मुझको देखकर मुसकराएगी, मैं उसका कोमल हाथ अपने दोनों हाथों में ले लूँगा! वह कहेगी—आपकी कविता बड़ी भावों से भरी हुई है! मैं कहूँगा—सब आप ही की दी हुई वस्तु है, और इसके पश्चात् अपना भारी सिर उसके चप्पल-युक्त चरणों पर रख दूँगा और वह अपनी बाहु-लताओं से उसे उठाकर कहेगी—हाँ-हाँ! यह क्या? इस सुखमय सरलता-पूर्ण स्वप्न के सिनेमा की पहली रील भी समाप्त नहीं हुई थी कि बनारस का स्टेशन आ गया। और ज्योंही गाड़ी रुकी, मैं मानों जाग गया। एक-एक पल, एक-एक कल्प के समान लग रहा था। चार बजे घर पहुँचा। शेविंग किया, स्नान किया, कपड़े बदले, सिर पर अगुरू लोशन उँड़ेलकर बालों को सँवारा। साइकिल उठाई और मिस मालती खन्ना के घर की ओर चला, अथवा यों कहिए दौड़ा। मालूम होता था कि साइकिल चल ही नहीं रही है। रास्ते में क्या हो रहा था,

मुझे पता न था। बँगले पर पहुँचा। नौकर से अपने आने की सूचना दी। रोज तो मैं बैठके में बुला लिया जाता था, उस दिन नौकर ने कहा आ रही हैं। मैंने समझा—मेरी कविता से प्रसन्न होकर 'मेरे' स्वागत में स्वयं आती होंगी। दो मिनट के बाद वह तशरीफ लाईं। एक कागज मेरे ऊपर फेंककर कहा—यह आपकी कविता है! मैंने अखबार उठा लिया। मैंने समझा कि संभवतः उन्हें बुरा मालूम हुआ है। मैंने कहा—क्षमा कीजिएगा, अब ऐसा न लिखूँगा।

वह बोली—क्षमा! जरा देखो तो तुमने क्या लिखा है। यह शरारत नहीं, बदतमीजी है। यह तुम थे, दूसरा कोई होता, तो... जरा देखो तो क्या लिख मारा है।

मैंने अखबार खोलकर देखा, पहली ही पंक्ति पढ़ने पर मुझे चक्कर आ गया। मेरा हार्ट क्यों नहीं फेल कर गया, यह एक समस्या है, जिसकी पूर्ति डॉक्टर लोग भी नहीं कर सकते। मैंने कुछ न कहा। साइकिल उठाई और 'हृदय' के दफ्तर में पहुँचा। पिस्तौल न था, नहीं तो संपादक को तुरंत गोली मार देता। बड़े ताव में बोला—आप संपादकी करते हैं कि घास छीलते हैं! मेरा बना बनाया महल आपने मटिया-मेट कर दिया। मेरे लदे-लदाए जहाज में टारपेडो मार दिया!

संपादक महोदय बोले—क्या है, बैठिए तो।

मैं धम से कुरसी पर बैठा या गिर गया और बोला—

मेरी कविता की यह हालत है ! आपके यहाँ कोई प्रूफ देखता है कि नहीं ?

संपादकजी बोले—मैं तो कविता जानता नहीं और आजकल अनेक ऐसी कविताएँ लिखी जाती हैं, जिनका अर्थ साधारण लोगों की समझ में नहीं आता। मैंने समझा ऐसा ही कुछ होगा। बात क्या है ?

मैंने कहा—बात यह है देखिए। मेरी कविता थी—

'जगती के सुख झूठे सब,
देते तुम बिना दिखाई।'

आपके प्रेस ने उसे छापा है—

'भँगनी के सूखे भूसे,
सब देंगे तुम्हें खिलाई।'

यह आपका संपादन है और लियाकत है ! मेरी पंक्ति यह थी—

'आँखों से साँझ-सवेरे,
गिरते हैं गीले मोती।'

इसे आपका प्रेस छापता है—

'झाँकोगे साँझ - सवेरे,
पहने, हे, गीली धोती।'

मैंने कहा—या तो यह जान-बूझकर शरारत की गई है, या आपका सारा स्टाफ निकम्मा है। और देखिए, मैंने लिखा था—

'जिस दिन से देखा तुमको,
अपलक हैं नैन हमारे।'

पत्र में छपा है—

'जिस दिन से देखा तुमको,
लपलप हैं नैन हमारे।'

मैं लिखता हूँ—

'रजनी के परदे में से,
हिमकर का छिपकर आना।'

और आपके कंपोजिटर कम्पोज करते हैं—

'रह नीके घर पर मेरे,
हम हैं बछिया के नाना।'

मैं तो कितनी व्यथा से लिखता हूँ—

'हम-तुम हों और निशा हो,
लौटे फिर युग में दिनकर।'

पत्र में छपा है—

'हम तुम हों और नशा हो,
लोटें फिर मग में दिनभर।'

भला बताइए, कोई जिम्मेदार संपादक इस प्रकार से अखबार निकालता है! कहाँ तो मैं कह रहा हूँ—

'मेरे जीवन की आशा,
हे मेरे मन की रानी।'

आप उसको कर देते हैं—

'मेरे जीवन की आशा,
हे रे मुन्नू की नानो।'

मेरी रचना है—

'क्या तुमसे कहूँ सुमुखि हे!
जिस सुख का रस न मिला है।'

प्रेस के भूत उसे बनाते हैं—

'क्या तुमसे कहूँ सुमुखि हे,
जो सूखा रसगुल्ला है।'

आपकी इस लापरवाही से मेरी जो क्षति हुई, उसे आप क्या लार्ड विलिंगटन भी नहीं पूरी कर सकते। संपादक महाशय ने कहा—आपकी लिखावट ही ऐसी होगी। आप अपनी लिखावट सुधारिए, या एक हिंदी का टाइपराइटर खरीदिए। मैंने तो समझा, आजकल के प्रचलित 'वादों' की भाँति यह भी कोई 'रसगुल्लावाद' होगा। मैंने जिस कलम से कविता लिखी थी, उसे गंगाजी के समर्पण किया। मैं अब कविता नहीं लिखता, प्रोज लिखता हूँ। कवियों को इस घटना से शिक्षा लेनी चाहिए—विशेषतः जब वह कोई प्रेम की कविता लिखते हों।

रेल का सफर

आखिर किसी तरह से मैं तैयार हुआ। ताँगा आकर दरवाजे पर खड़ा हो गया। मेरे दो सूट केस ताँगे पर रखे गए। गरमी के दिन में सुराही साथ रखना मेरे लिए उतना ही आवश्यक है जितना कुंजी बाँधने के लिए उपवीत का धारण करना। अब रह गई एक गठरी। लाख मना करने पर भी दस सेर खरबूजा मेरे बिस्तरे के चद्दर में लोगों ने बाँध ही दिया। मैं जब सफर करता हूँ तब गठरी इत्यादि अपने साथ ले चलना बहुत बेजा समझता हूँ। गठरी भद्दी ही नहीं मालूम होती फैशन के भी खिलाफ है। बीसवीं सदी के एक पढ़े-लिखे आदमी को इंटर क्लास में कोई गठरी लिए बैठा देखेगा तो क्या कहेगा यही विचार मेरे दिल को काटे खाता था। मगर जहाँ गया था वहाँ रिश्तेदारी थी। ऐसी जगह अधिक समझाना भी बेकार था। अस्तु नौकर से कह दिया—आगे लेकर बैठ और सबसे विदा होकर स्टेशन की ओर रवाना हुआ।

मेरे साथ जो नौकर था उसका इंट्रोडक्शन भी कर देना आवश्यक समझता हूँ। मेरे नौकर का नाम था भंडोसा। यह किस भाषा का शब्द है, इसकी व्युत्पत्ति क्या है; तद्भव है कि तत्सम मैं नहीं जानता। इसका निर्णय भाषा-शास्त्र के आचार्यों पर छोड़ देता हूँ। भंडोसा के बारे में अवश्य कुछ बताना आवश्यक है। उसका वय पंद्रह साल का होगा। शरीर की बनावट में मोटे भाई मौलाना शौकतअली का रिश्तेदार और सोने में स्वनाम धन्य कुंभकर्ण का बरखुरदार मालूम होता था। खाने में भी किसी चौबे से कम न था। काम करने में छोटी लाइन का मुकाबला करता है। परंतु सबसे बड़ी बात उसकी बुद्धि के संबंध की है। जब परमात्मा के यहाँ बुद्धि बाँटने का अवसर आया तब वह संभवतः सोया था, अथवा उसके पहले ही वह संसार की यात्रा को प्रस्थान कर चुका था। डाक्टर लोगों के अध्ययन का यह मनोरंजक विषय होगा कि उसकी खोपड़ी के भीतर खाली है अथवा पत्थर-सी कोई कड़ी वस्तु है जिसपर किसी प्रकार की छाप पड़ ही नहीं सकती।

ज्योंही ताँगा चार कदम गया होगा कि एक काना दिखाई दिया। जी कुछ खटका परंतु मैं था आर्यसमाजी, उसपर अंग्रेजी पढ़ा हुआ, विशेष परवाह न की; जाना तो था ही। इसके बाद ही हजरत ईसामसीह की दो सवारियाँ

लड़ती हुए आकर घोड़े से टकरा गई। ताँगा सड़क के किनारे ढुलकने से बचा। इसके पश्चात् जो घोड़ा भागा तो मालूम होता था कि डरबी की रेस दौड़ रहा है। राह में कितनी ही आपत्तियों और विपत्तियों से बचते हुए ताँगा स्टेशन पहुँचा। जब ताँगा खड़ा हुआ तब मैंने समझा कि पृथ्वी पर हूँ! चारो ओर निगाह फेरी, लोग सवारियों पर सवार होकर स्टेशन से जाते हुए दिखाई दिए सिवाय मेरे कोई आता न दिखाई दिया। 'लास्ट रोज ऑव समर' की भाँति मैं ही स्टेशन की ओर आनेवालों में था। एक कुली आया और ऐसी मीठी भाषा में मुझसे पूछा, 'हुजूर कहाँ तशरीफ ले जायँगे।' मैंने कुछ घबराते हुए कहा, 'मैं, मैं बनारस जाऊँगा।' वह बोला 'बनारस की गाड़ी तो चंद लमहे पेशतर छूट गई, अब दस बजे शब को दूसरी ट्रेन मिलेगी। हजूर वेटिंग रूम में तशरीफ ले चलें और आराम करें। असबाब ले चलूँ' इबारत तो वह ऐसी बोलता था मानो क्वींस कालेज के फारसी के प्रोफेसर हों। मैं सोचने लगा कि क्या उत्तर दूँ। ले चलो कहूँ अथवा ले चलिए। अंत में मैंने दोनों के स्थान पर कहा, 'अच्छी बात है।' और वेटिंग रूम में चला।

पाठक महोदय तथा पाठिका महोदया आपने गाड़ी कभी छोड़ी है? मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप कभी गाड़ी

रहे था रही हों और झंडी दिखाकर सीटी बजाई हो। मेरा मतलब यह है कि कभी आप कहीं से सफर करते हुए या लौटने के लिए स्टेशन चले हों और आपके आने के पहले ही गाड़ी स्टेशन से उसी प्रकार चली गई हो जैसे कभी-कभी श्रीमतीजी रूठकर कमरे से बाहर चली जाती हैं। अभी तक तो मेरा ध्यान कुली की लच्छेदार भाषा में उलझा-सा गया था। अब मुझे अपनी स्थिति पर ध्यान आया। पहले ताँगेवाले पर क्रोध आया मगर वह तो हिज हाइनेस सर आगा खाँ के घोड़े की भाँति सरपट से भी द्रुतगामी था। उसका क्या दोष। अपनी किस्मत को कोसते हुए वेटिंग रूम में आ धमका। चार घंटे काटना था। समय कटता ही न था कहीं शोर होता था, कुली चिल्लाते थे, कहीं पान-बीड़ीवाले गाना गाते थे। नींद भी न आती थी, नींद आने का कोई वक्त भी नहीं था। दिमागी हिसाब से दो दिन तक ठहरा हूँगा मगर घड़ी में देखा तो केवल दो ढाई घंटे अभी बीते होंगे। वेटिंग रूम में बैठा, लेटा, खड़ा हुआ, टहला, फिर भी तबीयत घबरा गई। नौकर से कहा—असबाब ले चलो, रखो अब हम बाहर ही टहलेंगे। वह बोला—'गाड़ी आ गई क्या बाबूजी ?'

'अरे अब आवेगी न, तैयारी करनी चाहिए।'

'तो असबाब तो कुली न उठाएगा ?'

'जा कुली को बुला ला।'

'कहाँ मिलेगा ?'

मेरी तबीयत बड़ी झुँझलाई। मैंने कहा—'तू बहस करेगा। अच्छा मैं बाहर टहलता हूँ तू यहीं असबाब देखा कर।'

इतना कहकर मैं बाहर टहलने लगा। कभी बुकस्टाल देखता, कभी मुसाफिरों के चेहरों की बनावट परखता था, कभी गिनता था कि प्लेट फार्म पर कितनी कोठरियाँ हैं और इस लेडी के मुख पर का पाउडर उड़ गया है या उस साहब की पतलून में फैशन से अधिक सिकुड़न पड़ी हुई है। मैंने फिर घड़ी देखी, नव बज चुके थे। मैंने सोचा कुछ खा तो लेना ही चाहिए। कपूर के रेसतरां में चला गया। समय बहुत था, मैं धीरे-धीरे खा रहा था। गाड़ी का छूट जाना मेरे लिए अफीम का नशा हो रही थी। धीरे-धीरे खाने पर भी पेट भर गया परंतु केवल आध घंटे ही बीते थे। जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब एक डाक्टर ने कहा था कि प्रत्येक कौर को बत्तीस बार कूचकर खाना चाहिए। यदि आरंभ से ऐसा अभ्यास मैंने किया होता तो इस वक्त समय का भारीपन न खलता। डेढ़ घंटा तो खाने में ही लग जाता। समय बिताने का अच्छा नुसखा था। रेफरेशमेंट-रूम से धीरे-धीरे बाहर निकला और वेटिंग रूम की ओर चला। वेटिंग रूम में क्या देखता हूँ कि एक कुरसी पर एक मौलाना साहब बैठे हैं। अवस्था

कोई पैंतीस साल की होगी। चूड़ीदार पायजामा है, सफेद अचकन है, वालरस के समान मूँछें हैं, सर पर कसीदे की दुपलिया टोपी है जो बालों में ऐसी चिपक गई है, जैसे तवे पर रोटी चिपक जाती है। उन्हीं के बगल में धरती पर बुरके में मढ़ी हुई एक महिला भी बैठी थी उन्हीं के पास उनका असबाब पड़ा था। और भंडोसा राम हमारे सूट केस की तकिया लगाकर शयन कर रहे थे। महिला महोदया मियाँ साहब की पत्नी थीं, बहन थीं, या लड़की। मैं नहीं कह सकता। मगर थीं कुछ ऐसी। कोई युवती रूपी पक्षी बुरके के पिंजड़े के भीतर फड़फड़ा रहा था। मैं वेटिंग रूम के दरवाजे पर दो मिनट खड़ा रहा हूँगा कि मुझे सुनाई दिया, 'अब तो यहाँ आ गई, घर का कोई नहीं है बुरका उतार दूँ। यहाँ कौन देखेगा।' मैंने मन में कहा कि और कोई देखे या न देखे मैं तो देख लूँ। मियाँ साहब मुसकराते हुए बोले खैर गाड़ी में उतार देना। शायद कोई महल्ले टोले का दिखाई दे। मैंने वेटिंग रूम में जाकर इन लोगों की मीठी बातों में अड़चन देना उचित नहीं समझा। बाहर चला आया। दो तीन चक्कर प्लेटफार्म का दिया कि गाड़ी आने की आवाज सुनाई दी। मैं वेटिंग रूम की ओर चला, गाड़ी की धमक तेज होती गई। मैं वेटिंग रूम में पहुँचा तो भंडोसा अभी तक मीठी नींद की गंगा में डुबकियाँ लगा रहा था। मैंने

पुकारी—'भंडोसा, ओ भंडोसा !

'ऊँ, ऊँ'।

'अरे उठता है, गाड़ी आ गई।'

तब से गाड़ी प्लेट फार्म पर आ गई। मेरा पुराना कुली आया नहीं। सराय की भाषा में मैंने पंद्रह-बीस शब्दों में कुली को आशीर्वाद दिया और कहा, 'सूट केस' मैं लटका लेता हूँ, बिस्तर और गठरी उठाकर साथ-साथ चल। मैं सूट केस लेकर दरवाजे की ओर मुड़ा ही था कि बड़ी तेज बिगड़ी बाँसुरी की आवाज आई ऊ ऊ·····ऊ। मैंने घूमकर देखा कि नींद में भंडोसा ने खरबूजा की गठरी के बजाय मियाँइन साहबा को उठा लिया। सर पर रखना ही चाहता था कि ऊ ऊ की आवाज आई और मारे डर के उसने ऊपर से ही उन्हें छोड़ दिया और वह भद्द से वेटिंग रूम के सिमेंट-सुजित धरातल पर गिर पड़ीं। मैं और मियाँ साहब एक दूसरे को ऐसा देख रहे थे जैसे जापान मंचूको को और इटली अबीसिनिया को देखती है। परंतु भंडोसा को इसकी कुछ परवा नहीं थी। बोला, 'ऐ बाबूजी खरबुजवा में का जानी का बोलत हौ, बिलाई हौ का।'

उधर गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी। इधर यह घटना घट गई। मेरे दिमाग का पहिया मालूम नहीं एक सेकंड में कितने चक्कर कर रहा था। सोच रहा था हिंदू-मुसलिम दंगा

होना ही चाहता है। मैंने नौकर की ओर देखकर कहा, 'अबे गदहे दिखाई नहीं देता, गठरी उधर पड़ी है।' फिर मियाँ साहब की ओर देखकर बोला, 'माफ कीजिएगा यह नौकर बिलकुल गदहा है' मियाँ साहब मेरी ओर विचित्र दृष्टि से देख रहे थे। मैंने अधिक ठहरना उचित न समझा, वेटिंग रूम के बाहर निकल आया। इंटर दर्जे की गाड़ी में घुस गया। थोड़ी जान में जान आई। विश्वनाथजी को मनाने लगा कि किसी प्रकार से गाड़ी छूट जाय तो जान में जान पड़े। अभी असबाब ठीक से रखा भी न था कि वही मियाँ साहब अपनी जनाना संगिनी को लिए हुए कुछ खोजते नजर आए। मैंने समझा मुझी को खोज रहे हैं, मैं चुपके से पेशाबखाने में घुस गया। मियाँ साहब और मियाँइन साहबा उसी गाड़ी में सवार हो गईं। उस समय उस डब्बे में कोई न था, मैं पेशाबखाने में था। भंडोसा मुड़कर असबाब रख रहा था। गाड़ी में घुसते ही बुरका उन्होंने उतार दिया। और एक सीट पर बैठ गईं। मियाँ साहब भी बगल में बैठ गए। गाड़ी चल चुकी थी। मैं कब तक पेशाबखाने में बैठा रहता। आखिर निकला। मेरी और मियाँ साहब की चार आँखें हुईं। फिर मैंने उस रमणी की ओर दृष्टिपात किया। फीरोजी साड़ी में एक सुंदर मूर्ति बैठी थी। पाँव में सलेमशाही कामदार जोड़े थे, चंपा-कलिका के समान निखरे

हुए रंग की पतली सी एक कामिनी की बड़ी-बड़ी नीलोफर के फूल के समान आँखें मेरी ओर पड़ीं। मैं शरमा गया। मिर्ज़ा साहब से मैंने अनेक शब्दों में माफी माँगी। वह मेरी बातों को सुन रही थी और उसके पतले ओठों के भीतर मुसकराहट की एक चंचल रेखा खेल रही थी जिसे वह प्रकट नहीं होने देना चाहती थी।

हमीं लोग गाड़ी में थे। यों मैं अलग जाकर सो जाता। मगर मनोरंजक साथ होने से छेड़कर बात करना मैंने आवश्यक समझा। किसी भाँति पुरानी बातें समाप्त हुईं। परिचय बढ़ा। मियाँ साहब जौनपुर जा रहे थे। वह उनकी सहधर्मिणी थीं। बीच में किसी स्टेशन पर एक और सज्जन आ गए। डब्बे में तीन पटरियाँ थीं। मैं मियाँ साहब की पटरी पर आ गया, भंडोसा ऊपर दूसरी ओर सो रहा था उसी के नीचेवाली पटरी पर नवागंतुक सज्जन चले गए। मुझमें और मियाँ साहब में बड़ी देर तक बातें होती रहीं थीं। मालूम नहीं कहाँ के विषय छिड़े। मलीहाबाद के आम और छतर-मंजिल के इतिहास से लेकर जौनपुर के अटाला मसजिद और गुलरोगन तक की बात हुई। बीच-बीच में कनखियों से उस ओर देखता भी जाता था जिधर देखना लोग कहते हैं सभ्यता के विरुद्ध है।

निद्रादेवी का आक्रमण होने लगा। मैं अपनी पटरी पर

सो गया। नींद आने लगी। मुझे केवल इतना सुनाई दिया कि 'तुम ऊपर जाकर सो रहो, मैं नीचे सोता हूँ। ऊपर तुम आराम से रहोगी।' एकाएक बीच में एक झटके के साथ गाड़ी खड़ी हो गई, और कुछ शोर-सा सुनाई दिया और ऊपर से एक शरीर धम से नीचे आ गया। मुझे नींद की आरंभवाली बात एकाएक स्मरण हो आई। मैंने समझा वही मृदु महिला गिरी हैं। तुरंत कसकर गोद में उठा लिया मगर किसमत सदा साथ देती है। फौरन पता लगा कि मेरी गोद में मियाँ साहब हैं। मालूम पड़ा कि ऊपर मियाँ साहब ही सोए थे। मैंने बात बनाई कहा 'देखिए अगर मैं न पकड़ लिए होता तो आपका सर फूट जाता।' मियाँ साहब भी बातों में आ गए। गाड़ी के एकाएक ठहर जाने का कारण यह सुना कि लाइन पर दो ऊँट आ गए थे। मियाँ साहब फिर ऊपर जाकर सोए। उनकी बीबी साहबा भी सोईं मैं भी सोने के लिये लेटा। अपनी बदकिस्मती पर सोच रहा था कि कैसा दाँव आकर पासा पलट गया। नींद आ नहीं रही थी। करवट घूमा। मियाँ साहब की नाक बिजलीघर के सायरन की भाँति बोल रही थी। उनकी श्रीमतीजी खिड़की की ओर मुँह किए सो रही थीं। मैं इधर-उधर देख रहा था। श्री मियाँइन साहबा की पटरी पर एक हरा रेशम का डोरा पड़ा था। मुझे इस समय स्वयं आश्चर्य हो रहा है

कि मेरा हाथ क्यों उसपर गया और कैसे। मैंने वह रेशम का टुकड़ा उठा लिया और अपनी ओर खींच लिया। क्या देखता हूँ कि वह टुकड़ा छोटा सा नहीं है, बड़ा है। इतना बड़ा रेशम का टुकड़ा यहाँ क्यों रखा है? यही सोचकर मैं खींचने लगा। रेशम का टुकड़ा हनुमानजी की पूँछ की भाँति बढ़ने लगा। देखते देखते मेरे हाथ में एक गोला रेशम का तैयार हो गया। अब काटो तो खून नहीं। यह लोग उठेंगे तो क्या कहेंगे। हे परमात्मा किस सायत से चला था! मैंने इसको समाप्त ही कर देना उचित समझा और रेशम और खींचने लगा। कोई दस मिनट में रेशम का दूसरा छोर आ गया। मैंने सारा रेशम खिड़की में से फेंक दिया। कलेजा इतनी जोरों से धड़क रहा था मानो लोप के सामने जा रहा हूँ। रिप वैनविंकल अपनी बीवी के सामने जाते समय उतना न घबराता रहा होगा जितना मैं घबरा रहा था। रेशम फेंकने पर कुछ घबराहट कम हुई देखा तो सब सो रहे हैं। मैं भी लेटा मगर आँखों में नींद कहाँ। कोई तीन बजे होंगे। महिला की नींद खुली। ज्योंही वह उठकर बैठी उसने कहा, 'एजी सुनो तो' ऊपर से मियाँ साहब बोले, क्या है।'

'मेरा जैपर क्या हुआ?'

'कैसा जंपर?'

'अरे वही हरे रेशमवाला जो मैं पहनकर आई थी।'

'पहनकर आई थी तो क्या हुआ ?'

'अरे अभी तो मेरे बदन पर ही था।'

'तो तुम्हारे बदन पर से कौन उतार लेगा। पहनकर न आई होगी।'

'नहीं तो क्या नंगी आई थी।'

दोनों में खूब बहस हो रही थी। मैं सोया सुन रहा था।

डिपुटी इंसपेक्टरी

'लीडर' में एक विज्ञापन निकला। संयुक्त-प्रांतीय सरकार को एक डिपुटी इंसपेक्टर की आवश्यकता थी। दोस्तों में चर्चा हुई। वहाँ बी० ए० एल० टी० की आवश्यकता थी। मैं एम० ए० एल० टी० था, सो भी प्रयाग विश्वविद्यालय का। प्रयाग विश्वविद्यालय का एम० ए० पास करना और जमाल-गोटा खाकर हज़म कर जाना बराबर है। वह पाँच साल की मास्टरी का अनुभव माँगते थे, मैं नव साल मास्टरी कर चुका था। सो भी मास्टरी कैसी कि लड़के हमारा नाम सुनते ही हनुमान बाहुक का पारायण करने लगते थे। लोगों से सलाह ली। मित्रों ने कहा ऐसा अवसर हाथ से जाने देना और सड़क पर रुपया पड़ा पाकर छोड़ देना बराबर है। डिपुटी इंसपेक्टरी की प्रशंसा के पुल लोगों ने बाँध दिए। किसी ने कहा 'आमदनी ही आमदनी है। खर्च तो बिलकुल है ही नहीं।' एक सज्जन बोले 'अरे साहब नौकर रखने की भी जरूरत नहीं।' 'दूसरे ने कहा, 'हाँ और क्या, जिस गाँव में

गए मास्टर लोग तावेदारी में हाथ बाँधे खड़े रहेंगे। एक सज्जन कहने लगे कि घी, दूध, दही, छाछ सब बढ़िया से बढ़िया दौरे पर हाज़िर रहेंगे; लकड़ी मुफ्त, नौकर मुफ्त, फिर क्या चाहिए। दूसरे ने कहा अरे भाई दौरे पर की बात छोड़ दो, वहाँ तो सब सामान लदा रहेगा ही, घर पर जायगा। गुड़ तैयार हुआ, बँहगी लिए बेगार घर पर खड़ा। एक गाँव से पाँच सेर भी गुड़ आया तो घर पर रखने के लिये जगह न मिलेगी भुट्टे के मौसम में भुट्टा, सिंघाड़े के मौसम में सिंघाड़ा, छीमी, तरकारी किस बात की कमी रह जायगी। शादी विवाह में घी, दही, चीनी, तेल का परनाला बहने लगेगा। मैंने कहा, कि मैं नौकरी करने जा रहा हूँ कि रिशवत लेकर घर भरने। सबने कहा—हः हः हः हः रिशवत तो उसे कहते हैं जो माँगी जाय। यहाँ तो आपको जबान भी हिलानी नहीं पड़ेगी यह तो प्रेम की भेंट होगी। रिशवत यदि आप लेना चाहें तब तो एक-एक अध्यापक की तबदीली में दस-बीस रुपए तो बिना तरद्दुद मिलें। और कहीं अगर चेयरमैन साहब से मिल जाइए तब तो कई बैंकों में एकाउंट खोलना पड़े।

मुझे ऐसी बातें दिखाई गईं कि मैंने समझा कि गवरनरी से कम छोटा ओहदा डिपुटी इंसपेक्टरी नहीं है। वेतन आरंभ में डेढ़-दो सौ ही मिलेगा तो क्या? लोग डिपुटी साहब तो कहेंगे, रोब तो रहेगा। सवेरे-शाम अध्यापकों का गुरु-

मुट मेरे घर पर सलाम करने के लिये जुटा रहेगा। अभी अर्जी ड्रैफ़्ट नहीं हुई थी लेकिन हिसाब बनने लगा। साल भर में वेतन और भत्ता मिलाकर ढाई हजार के लगभग बचेगा। उसकी जमीन खरीदूँगा। दूसरे साल तीन चार बिगहे जमीन किसी गाँव में ले लूँगा, फिर धीरे-धीरे शहर में एक मकान, गाँव में एक छोटा सा बाग बनवाऊँगा महात्मा गांधी ने स्वराज्य का जो कुछ सपना देखा हो, मेरी डिपुटी इंसपेक्टरी का सपना किसी षोड़स वर्षीया के प्रवाल समान मृदुल अधरों से कम मीठा न था।

अर्जी ड्रैफ्ट करने की बात छिड़ी। 'किंग्ज इंगलिश' से लेकर 'एड्स टु दि स्टडी ओव इंगलिश' तक अनेक पुस्तकों का निरीक्षण किया, तब एक अर्जी लिखी। उसे सात व्यक्तियों ने देखा। सात बड़ी शुभ संख्या है। सप्तर्षि की पूजा होती है, और भारत में नए विधान की व्यवस्था करने के लिये भी सात सज्जन साइमन साहब के साथ पधारे थे। किसी ने पैरे-ग्राफ में दुरुस्ती की, किसी ने कई स्थान पर गोदने की भाँति कामा अलंकृत किया। किसी ने शब्दों में परिवर्तन किया। बहुत शीघ्रता करने पर भी अर्जी तीन चार दिनों में तैयार हो गई।

अर्जी के साथ-साथ एक घोड़े की सवारी का भी सर्टि-फिकेट देना था। मैं अपनी जिंदगी में साइकिल छोड़कर

किसी जीती जागती सवारी पर नहीं चढ़ा था। घोड़े की तो बात क्या कुत्ते पर भी नहीं बैठा था। बहुत खोज करने पर एक सज्जन मिले जो मेरे परिचित निकले। उनमें और पुलिस सुपरिंटेंडेंट में घनिष्टता थी। उन्होंने मुझे सहायता देने का वचन दिया। उन्होंने कहा—'घोड़े का प्रबंध मैं कर दूँगा। दो एक दिन उस पर चढ़ लेना और मैं साहब से बात कर चुका हूँ। मैंने एक टट्टू पर बेनिया के बाग में घोड़-दौड़ का खेल खेला। फिर एक दिन सुपरिंटेंडेंट साहब के बंगले पर पहुँचा। सूचना देने पर सुपरिंटेंडेंट साहब बाहर आए। मैंने तुरंत घोड़े को ऐंड़ लगाई। सुपरिंटेंडेंट साहब में मालूम नहीं कहाँ का चुंबकत्व था कि घोड़ा टूटी फोर्ड की तरह रुक गया। मैंने इतनी ऐंड़ मारी कि मेरे फ्लेक्स बूट की ऐंड़ी निकल पड़ी मगर साहब के सामने से घोड़ा हिला नहीं। सुपरिंटेंडेंट साहब स्काटलैंड के निवासी थे। देख-देखकर मुस्करा रहे थे। मैंने चिकोटियाँ भी काटीं, और घोड़े की पीठ पर दाँत काटने वाला ही था कि घोड़ा चला। मगर किस चाल से? आज-कल लड़कियाँ अपने ससुराल की ओर अधिक तेजी से चलती हैं। मैं पसीना के सागर में डूब रहा था, इधर-उधर घूमकर साहब के सामने आया। साहब ने कहा—Well you want a certificate come in मैंने समझा अब तो बाजी मार ली है। घोड़े पर से ऐसे कूदा जैसे चना देखकर बंदर

कूदते हैं। साहब के साथ कमरे में गया उन्होंने सफेद कागज पर पाँच छः सतरें लिखकर एक लिफाफे में रखकर मुझे दे दिया। वहाँ मैंने पढ़ा नहीं। बाहर आकर देखा तो उसमें लिखा था—'Mr.....Came on a horse no bigger than a bull dog. He tried to coax the horse to move but it remained rooted to the spot in the end it began to move like a lame snail.'

मेरी बसी-बसाई दुनिया उजड़ गई, मेरी लहकती खेती पर पाला मार गया। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ मानों मैं विवाह करने जा रहा हूँ और रेल लड़ गई हो। फिर उन सज्जन से मिला जो सुपरिंटेंडेंट साहब के मित्र थे और कहा कि आपके मित्र साहब ने सार्टि-फिकेट दी है कि बर्नर्डशा का नाटक लिखा है। उन्होंने कहा कि तुमने गलती की। संध्या के समय जाना था। सुपरिंटेंडेंट साहब को रतौंधी होती है। उस समय गधे पर भी चढ़े होते तो उन्हें पता न लगता। और क्लब से वह नशे में लौटे होते। बड़ी अच्छी सार्टिफिकेट मिल जाती।

मैं तो निराशा के ज्वालामुखी के मुख में जा रहा था। उन्होंने पूछा 'अभी कितने दिनों में अर्जी जायगी'? मैंने कहा अभी तो एक महीना बाकी है। मगर मैं पहले भेज देना चाहता हूँ कि 'आइडिया' बन जाय। वह बोले—कुछ

हर्ज नहीं। मैं प्रबंध कर दूँगा। आप पुलिस लाइन में जाइए और पंद्रह बीस दिन सवारी सीखिए।

पुलिस लाइन में सवारी सीखने का प्रबंध हो गया। पहले दिन जब मैं पहुँचा तब तक सरजंट एक सिपाही के साथ आया। उसने उसे मेरे सपुर्द कर दिया। पहले तो उसकी भाषा मेरी समझ में न आई। टूटे पियानों की भाँति वह बोल रहा था। मगर मैंने अर्थ निकाल लिया। एक घोड़ी मेरे सामने लाई गई जो विंदुमाधव के घरहरे की बच्ची मालूम होती थी। मैंने समझा कि इस पर चढ़ने के लिये एक सीढ़ी भी आती होगी। थोड़ी देर तक इंतजारी करने के बाद वह सवार बोला—'चढ़िए, क्या घोड़े की पूजा कर रहे हैं?

उसने ऐसे ढंग से कहा मानों किसी चोर को डाँट रहा है। मैंने कहा इसपर बिना सीढ़ी के कैसे चढ़ा जायगा? उसने इस तरह से मेरी ओर देखा जैसे मैं समझता हूँ क्लाइव ने सिराजुद्दौला को देखा होगा। फिर बोला—'रिकाब पर से चढ़िए'। मैंने दाहिना पैर रिकाब पर रखकर उछलना चाहा इतने में उसने मेरा हाथ पकड़कर खींच लिया। मैंने समझा मेरा हाथ शरीर में से अलग हो गया। उसने कहा,—'बायाँ पैर रखकर चढ़िए।' मैं पहाड़ पर चढ़ चुका हूँ मगर घोड़े या घोड़ी पर चढ़ना उससे भी कठिन था। किसी प्रकार से उछलकर लड़खड़ाते हुए घोड़ी की पीठ पर बैठ

गया। हृदय मेरा इंपीरियल मेल की गति से चल रहा था। सवार बोला रास खींचिए। मैंने जोर से रास खींच ली। एकाएक घोड़ी ने अपने दोनों अगले पैर उठा लिए। मैंने समझा सूर्य-नमस्कार कर रही है। सवार ने कहा—'अरे इतने जोर से नहीं। लगाम ढीली करके धीरे से ऐंड़ मारिए।' मैं तो इस समय हुक्म का गुलाम था जो उसने कहा मशीन की भाँति मानता गया। रास ढीली करने पर घोड़ी चली। पहले धीरे फिर ऐसे चलने लगी कि मैं उसके पीठ पर टेनिस बाल की भाँति उछलने लगा। पता चला कि इसे साइसी भाषा में दुलकी कहते हैं। घोड़ी ज्यों ज्यों चलती थी, मैं कभी उसकी दाहिनी ओर कभी बाईं ओर छटक रहा था। और धीरे - धीरे पीठ से पेट की ओर खिसक रहा था। अभी मैं इस बात पर विचार ही करनेवाला था कि पेट की ओर मैं क्यों जा रहा हूँ कि मैं अपना सर पृथ्वी का चुंबन करते देखता हूँ जैसे शीर्षासन होता है। बायाँ पैर रिकाब में उसी तरह फँसा हुआ है जैसे छ लिवर के ताले में ताली टूटकर फँस जाती है और दाहिना पैर आकाश की ओर हिल रहा है मानो ध्रुव तारा को खोज रहा है। घोड़ी खड़ी हो गई थी नहीं तो पृथ्वी मेरे कपाल से शेक हैंड करने लगती और बिना शेविंग क्रीम के ही मेरा खोपड़ा वाइसराय भवन के डैंसिंग फ्लोर के समान चिकना हो जाता। सवार आ गया और

उसने इस भयंकर जाल में से मेरा छुटकारा किया। घर पर जब आया तब सारे शरीर में ऐसी पीड़ा हो रही थी मानो सेप्टिसीमिया हो रही है।

दूसरे दिन फिर घोड़सवारी सीखने जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। उधर डिपुटी इंसपेक्टरी की नौकरी का हरा-भरा उद्यान नेत्रों के सामने लहलहाता हुआ नृत्य कर रहा था। दोनों विचारों में 'टग आव वार' हो रहा था। डिपुटी इंसपेक्टरी ने विजय पाई। चला पुलीस लाइन। कल की घटना उसी प्रकार याद आ रही थी जैसे जिबिस्को को गामा की पटकान। मगर जैसे जिबिस्को ने कुश्ती नहीं छोड़ी मैंने घोड़सवारी सीखना नहीं छोड़ा। वही ऊँची घोड़ी वही सवार। किसी प्रकार घोड़ी पर बैठा, घोड़ी फिर अलफ़ हुई। सवार के सर में मालूम नहीं क्या समाया कि उसने घोड़ी को कसके दो चाबुक दी और घोड़ी भठियारिन की जबान की तरह चल पड़ी। मुझे इतना खयाल है कि रास को मैंने संकल्प के पैसे की तरह छोड़ दिया, और दोनों हाथों से घोड़ी की गरदन पकड़ ली। मैंने लड़कपन में सुन रखा था कि पशु को भी मातृ पुकारने पर दया आ जाती है। घोड़ा होता तो मामा कहता। मेरे मुख से निकल पड़ा, मामी बस करो'। इसके बाद की घटना पुलीस लाइन के गर्भ में है। मेरी आँख खुली तब भी मैं समझता था कि पुलीस लाइन की घोड़ी कटे पतंग

की भांति उड़ी चली जा रही थी। मेरे मुख से फिर [illegible] 'मामी, दया।' आँख उसी दम खुली तो क्या देखता हूँ कि मैं बिस्तरे पर हूँ और खाट की बगल में एक हंस पक्ष के समान शुभ्रवसना रमणी जिसका मुख काश्मीरी [illegible] समान रंगीन था, खड़ी थी। मैं घबड़ाया कि थोड़ी [illegible] रूपांतर कैसे हो गया। एक ही मिनट बाद पता लगा कि मैं नर्क के उस विभाग में हूँ जिसे सभ्य भाषा में अस्पताल कहते हैं। मैं देखता क्या हूँ कि मेरे दाहिने पैर में, बायें हाथ में, दाहिनी कलाई में और खोपड़ी पर कस कसकर पट्टियाँ बँधी हैं। कहीं सिंपल फ्रैक्चर है, कहीं कंपाउंड, कहीं [illegible]। मुझसे रहा न गया, नर्स से पूछा—यह क्या बात है? नर्स ने अपनी पतली अँगुली प्रवाल-पत्र से ओठों पर रखकर कहा, 'आप अपने होश में नहीं हैं, चुप रहिए।'